अंक 1

वर्ष 11

सोमसी

1/81

हिमाचल-कला-संस्कृति-भाषा अकादमी

tharahkardu.in

सोमसी

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी की त्रैमासिक पत्रिका

वर्ष 11 जनवरी 1985 अंक 1

मुख्य सम्पादक
वीरभद्र सिंह
अध्यक्ष अकादमी

उप मुख्य सम्पादक
सागर चन्द नैयर
वरिष्ठ उपाध्यक्ष अकादमी

सम्पादक
एम०आर० ठाकुर
रमाकान्त जोशी

सहायक सम्पादक
सरोज सांख्यायन

आवरण
ओम सुजानपुरी

41

जनवरी, अप्रैल,
जुलाई व अक्तूबर
में प्रकाश्य

लेखक द्वारा दिए गए तथ्यों तथा विचारों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं ।

वार्षिक चन्दा 12 रुपए एक प्रति 3 रुपए

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी

क्लिफ़ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

सोमसी जनवरी 1985

इस अंक में

क्रमांक	लेख का नाम	लेखक	पृष्ठ संख्या
1.	लोक गाथाओं में व्याप्त ऐतिहासिक तत्व	डॉ० श्री राम शर्मा	1
2.	ऐसे मनाई जाती है चम्बा में लोहड़ी	रमेश जसरोटिया	11
3.	धौलाधार का चितेरा सरदार सोभा सिंह	चरणजीत सिंह	15
4.	अभीजात्य संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में लोक संस्कृति	डॉ० अशोक जेरथ	19
5.	मेला बाड़ी धार	शंकर लाल शर्मा	24
6.	आउटर सराज का निरसू	डॉ० बलदेव ठाकुर	28
7.	चिन्तपुरणी : एक अध्ययन	देवी दास शर्मा	32
8	लोकगीत मोहणा के कथानायक मोहन	डॉ० लेख राम शर्मा	34
9.	भरमौर का बांढा	अमर सिंह रणपतिया	38
10.	हिमाचल भूमि के माहुनाग	शास्त्री दीना नाथ गौतम	41
11.	जिला ऊना का बाबा रूद्रू	ईश्वर दुखिया	45
12.	केलांग देवता	तोबदन	49
13.	श्री गुरुनानक सूर्य्योदय जन्मसाखी	डॉ० मनोहर लाल	55
14.	स्व० जयदेव बड़ोत्रा : एक श्रद्धांजलि	हरि प्रसाद सुमन	60
15.	विवाह लोकगीत	जगदीश चन्देल	63
16.	लोक गाथाओं में—गूगाछत्री	कु० स्वर्ण कान्ता शर्मा	68
17.	निरमंड क्षेत्र में प्रचलित भक्तिगीत	सुरजीत सिंह पटयाल	76
18.	स्मृति कण	भगत राम द्विवेदी	80
19.	श्री रामस्यादर्श:	आचार्य मदनमोहन शर्मा	94
20.	श्री राम यशोवनर्णम्	देवकी नन्दन	95
21.	प्रेयसीं प्रति	प्रेम लाल आचार्य	97
22.	स्मरामि कस्या मुखारविन्दम्	प्रेम लाल आचार्य	98
23.	जननी भगवति	मनसा राम शर्मा 'अरुण'	99
24.	देवदशा	केशव राम शर्मा	100

सम्पादकीय

हमें अपनी शोध एवं सांस्कृतिक पत्रिका सोमसी के वर्ष 1985 के प्रथमांक को आप जैसे प्रबुद्ध पाठकों के हाथों सौंपते हुए हर्ष हो रहा है कि इस पत्रिका ने अपनी यात्रा के दश वर्ष पूरे कर लिए हैं और इस अंक के साथ ही ग्याहरवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। दस वर्षों का समय कोई कम समय नहीं होता। इस समयावधि में यह पत्रिका आप साहित्य जिज्ञासुओं, पारखियों, बुद्धिजीवियों की कितनी ज्ञान पिपासा शान्त कर पाई है, इसका निर्णय तो आप स्वयं करेंगे परन्तु हमने अपनी ओर से पूरा प्रयत्न किया है कि यह पत्रिका अपने क्षेत्र की श्रेष्ठ पत्रिका बनी रहे और प्रदेश की कला साहित्य एव संस्कृति की विशिष्ट उपलब्धियों को पाठक जगत तक बराबर पहुंचाती रहे।

पत्रिका ने आज तक अपने चालीस अंकों, में भाषा, कला, पुरातत्व एवं लोक साहित्य की विभिन्न विधाओं नाट्य, नृत्य एवं गीतों आदि पर बहुविध, सारगर्भित, खोजपूर्ण सामग्री दी है ताकि हिमाचली संस्कृति के अनछुए पहलुओं को स्पर्श किया जा सके। पत्रिका के स्वरूप को सही शोधनुमा बनाए रखने की कोशिश रही है। वैसे यह कहना कि हिमाचल की धरती का प्रत्येक ज़िलाक्षेत्र, अपने आपमें राशि-राशि सांस्कृतिक समृद्धियां समेटे हुए हैं कोई अत्युक्ति नहीं है। इस दृष्टि से चम्बा क्षेत्र जहां चित्र, मूर्ति तथा शैवधर्म के अनेक सिद्ध स्थानों भरमौर और मणिमहेश आदि के कारण उल्लेख्य है वहां कांगड़ा अपनी एतिहासिकता, चित्रकला तथा ज्वालामुसी, चामुण्डा व बज्रेश्वरी देवी जैसे शक्तिपीठों के कारण प्रसिद्ध है। ऊना में डेरा बाबा रूद्र आदि महत्व के सिद्ध स्थल हैं तो हमीरपुर बाबा बालकनाथ के प्रताप से लोक विश्रुत है। बिलासपुर अगर व्यास महर्षि की घाटी से ख्यात है तो मण्डी माण्डव्य महर्षि और अनेक लोक परम्पराओं से समृद्ध है। सिरमौर यदि भगवान परशुराम की लीलाभूमि है तो कुल्लू देवताओं की घाटी के नाम से ही विख्यात है। इसी प्रकार शिमला जहां अपनी नैसर्गिक छटा के कारण आकर्षण का केन्द्र है, वहीं पर यह पाण्डवकालीन समृतियां समेटे हुए भीमाकाली तथा सराहन आदि स्थानों के प्रसिद्ध मन्दिरों के कारण भी स्मरणीय है। इसी प्रकार किन्नौर

वैदिकोत्तर काल से ही लोगों के लिए स्पृहणीय क्षेत्र रहा है वहां लाहुल तथा स्पिति का भूभाग, बौद्ध धर्म एव गोम्पा सस्कृति के कारण ख्यात है। इसी प्रकार अन्य स्थान भी अपनी विशेषताए लिए हुए हिमाचल की धरा को गौरवमण्डित करते हैं। भाषाई दृष्टि से आज भी हिमाचल एक ऐसा प्रदेश है जिसके कई गावों (पट्टन वैली आदि) में अब भी सस्कृत बहुल भाषा बोली जाती है। पाठकों! हमारा यहां यह सब कुछ लिखने का उद्दश्य, ज्ञात का पुनर्वाचन करना नहीं है अपितु अपना संस्कृति व भाषा के प्रति आपके मन में विद्यमान स्नेह संस्कारों को पुन: जागृत करना है ताकि आप **सोमसी** जैसी पत्रिका के प्रति और अधिक सहयोगपूर्ण हो सकें।

प्रस्तुत अक में जो लेख दिए जा रहे हैं वे भी संस्कृति एवं लोक साहित्य आदि के विभिन्न पक्षों पर सुचिन्तित सामग्री प्रस्तुत करते हैं। हमें आशा है इससे आपकी सुसंस्कृत बुभुक्षा मिटेगी।

अभी संस्कृति के अध्ययन के अनेक नवीन अध्याय अनवांचे हैं। हमें विश्वास है कि आप उनमें सहयोग करके हमें ठोस, विवेकपूर्ण और तर्काश्रित सामग्री भेजकर पत्रिका की गरिमा बढ़ाने में हिस्सेदारी निभाएंगे।

हां एक निवेदन आपसे सोमसी के **संस्कृत अनुभाग** के सम्बन्ध में भी करना है। आप यह अनुभाग सोमसी के उनतालिसवें अंक से देख रहे होंगे। संस्कृत हमारे प्रदेश में भी वैसी ही मान्य साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध तथा सर्वस्वीकृत भाषा है जितनी कि किसी भी अन्य प्रदेश में। अतः इसके और अधिक प्रचार, प्रसार के लिए हमारे वर्तमान मुख्य मन्त्री **श्री वीरभद्र सिंह** जी ने सोमसी में यह अनुभाग सम्बद्ध करने की स्वीकृति दी है। अतः इस निमित भी आपसे अनुरोध है कि आप संस्कृत में अपनी रचनाएं भेजें। जो संस्कृतज्ञ है उन्हें चाहिए कि वे प्रदेश की संस्कृति साहित्य से सम्बन्धित संस्कृत में सरल एव सुललित रचनाएं प्रेषित कर संस्कृत-अनुभाग को भी अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने में योगदान दें।

—रमाकान्त जोशी

बिलासपुर के विशेष संदर्भ में

लोक गाथाओं में व्याप्त ऐतिहासिक तत्व

● डॉ० श्री राम शर्मा

लोक गाथा शब्द हिन्दी में अंग्रेजी के 'बैलेड' शब्द के पर्याय के रूप में ग्रहण किया गया है । बैलेड शब्द लैटिन भाषा के बेलारे शब्द से निकला है । बेलारे का अर्थ है—नृत्य करना । संभव है कि प्रारम्भ में नृत्य के सहयोग से गाए जाने वाले गीत को बैलेड कहा जाता हो लेकिन आजकल कथात्मक गीतों को ही बैलेड कहा जाता है ।

भारतीय लोक साहित्य के विद्वानों ने दीर्घ कथात्मक गीतों को पोवाड़ा, पंवारा, पंवाड़ा, कथा गीत, गीत कथा और लोक गाथा नाम दिए हैं । डा० कृष्ण देव उपाध्याय[1] ने इन गेय कथाओं को अंग्रेजी शब्द बैलेड का पर्याय मानते हुए कहा है कि हमारी सम्मति में लोक गाथा शब्द अधिक भावाभिव्यंजक है । बिलासपुर क्षेत्र में प्रचलित कथात्मक, गीतों के लिए भी लोकगाथा नाम ही अधिक उपयुक्त है । इस नाम में लोक-भावना कथात्मकता गेयता और परंपरा का पूर्ण रूप से समावेश हो जाता है । लोक गाथा नामक कृति के विषय में कहा जा सकता है कि लोक गाथा गेयता एवं कथात्मकता से युक्त एक ऐसी रचना है, जो मौखिक परंपरा में पीढ़ी-दर-पीढ़ी यात्रा करते हुए निरतर विकसित होती रहती है । लोक गाथाओं की सामान्य विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि लोक गाथाएं स्थानीयता का गहरा पुट लिए हुए, अनलंकृत शैली में स्थानीय संस्कृति को अभिव्यक्त करती हैं । इनमें रचयिता के व्यक्तित्व का अभाव रहता है । अपनी मौखिक परंपरा में पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहने के कारण ये विकसनशील भी होती हैं, इसलिए इनमें वर्तमान में आकर्षण उत्पन्न करने की क्षमता भी होती है ।

लोक गाथाओं की परंपरा अति प्राचीन है । प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में लोक-गाथाओं का यत्र-तत्र उल्लेख मिलता है । हमारे प्राचीनतम लिखित साहित्य वेद से पता चलता है कि विभिन्न संस्कारों के अवसर पर जो लोकगान होता था, वह गाथाओं के नाम से प्रसिद्ध था । वैदिक युग में यज्ञ[2] के अवसर पर गाथा गाने की प्रथा थी इनके गाने वालों को गाथिन[3] कहा जाता था । पद्य या गीत के पर्याय के रूप में भी गाथा शब्द प्रचलित था । ब्राह्मण तथा आरण्यक ग्रंथों में भी

1. कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० 389
2. ऋग्वेद 8/32/1
3. इन्द्र मियं गाथिनो, वृहत् ऋग्वेद 1/7/1

गाथाओं का उल्लेख मिलता है। वैदिक गाथाओं के नमूने शतपथ ब्राह्मण[1] तथा ऐतरेय ब्राह्मण में उपलब्ध होते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण[2] में ये गाथाएं कहीं श्लोक नाम से निर्दिष्ट हैं, तो कहीं यज्ञ-गाथायें नाम से। पुराणों में अनेक लोक गाथाओं का वर्णन मिलता है। पुराणों मे गाथा के महत्व को व्यास[3] ने स्वयं स्पष्ट किया है। ऐतिहासिक गाथाओं की परंपरा महाभारत काल में भी अक्षुण्ण दिखाई पड़ती है इसके साथ ही महाकाव्यों, पालि जातकों एवं अपभ्रंश काल में भी लोक गाथाओं की परम्परा देखने को मिल जाती है।

बिलासपुर क्षेत्र में अनेक लोक गाथाएं मिलती हैं। यहां की स्थानीय बोली मे गाथा के लिए 'भेड़ा' (लड़ाई) शब्द का प्रयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि गाथाओं का मुख्य विषय कोई साहसिक घटना या कार्य होता है, अधिकांश लोक गाथाएं इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। लेकिन सभी गाथाओं में ऐसी बात नहीं मिलती। बिलासपुर जनपद में कुछ ऐसी लोक गाथाएं प्रचलित हैं जोकि ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित हैं और अनेक ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाश में लाती हैं। इन गाथाओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक अवस्था के संकेत मिलते हैं। अतः इन्हें इतिहास के अध्ययन का एक मुख्य स्रोत माना जा सकता है।

राजा भर्तृहरि एक प्राचीन ऐतिहासिक शासक रहा है। इस राजा से संबंधित गाथाएं न केवल बिलासपुर में बल्कि सारे हिमाचल प्रदेश एवं हिन्दुस्तान में गाई जाती हैं। राजा भर्तृहरि से संबंधित लोक गाथा में आज बहुत से धार्मिक एवं पौराणिक अभिप्रायः भी जुड़ गए हैं। राजा भर्तृहरि अपने समय का एक बलवान एवं प्रतापी शासक था। एक बार वह शिकार खेलने के लिए जंगल में गया। वहां उसने एक हिरन का शिकार किया। हिरन को मरते देख राजा का मन करुणा से भर गया और उसने संसार को त्यागने का प्रण ले लिया। परिणाम स्वरूप उसने राजपाठ को त्याग दिया और तपस्या के लिए चल पड़ा। भर्तृहरि ने कलेसर (नादौन के निकट, जिला कांगड़ा) नामक स्थान पार गुरू जियालाल गोसाईं की छत्र छाया में तपस्या की। भर्तृहरि के गुरू व तपस्या स्थली का गाथा में वर्णन इस प्रकार हुआ है :

हत्थां बी जोड़ी अर्जी जे करदा,
चरने सीस भुकाया।
तीजिया धूणिया पर आई बैठया,
कलेसर भाग जगाया।
कमा कमाई करदा गुरु जिया लाल
सुण ओ जोगी भरतरिया,
तीजी धूणीं खाली पई री,
तू लै अपणां आसण जमाई।

---

1. शतपथ ब्राह्मण, 13/5/4, 13/4/38
2. ऐतरेय ब्राह्मण, 39/7
3. विष्णु पुराण, अंश 3, अंक 6

जब भर्तृहरि कलेसर नामक स्थल पर पहुंचा तब गुरू जियालाल गोसाईं और उनका शिष्य गोपी चन्द तपस्या कर रहे थे। गोपी चन्द भी एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक शासक रहा है। उन्होंने भी राजपाठ त्याग कर जंगल की शरण ले ली थी। राजा भर्तृहरि ने वहां पहुंचकर दोनों को दण्डवत प्रणाम किया और गुरू शरण में आने के लिए विनती की। गुरू जियालाल ने भर्तृहरि का मुण्डन किया और अपनी शरण में ले लिया। भर्तृहरि ने अपने गुरू एवं गुरू शिष्यों के साथ कई वर्षों तक तपस्या की और कलेसर नामक स्थल को पवित्र किया। यह स्थल आज भी एक ऐतिहासिक यादगार के रूप में विद्यमान है। आज यह स्थल ऐतिहासिक की अपेक्षा धार्मिक दृष्टि से अधिक महत्व रखता है। हर वैसाखी के दिन इस स्थान पर मेले का आयोजन किया जाता है।

इस प्रकार की गाथाएं अधिकतर ऐतिहासिक तथ्यों पर परदा डालती हैं। लेकिन उस परदे के पीछे धार्मिक मान्यताओं, युग विशेष के धार्मिक-आध्यात्मिक अन्दोलनों तथा अनेक सांस्कृतिक पहलुओं का उद्घाटन भी होता है। इस गाथा से कलेसर स्थान पर नाथों-सिद्धों के प्रभाव का ऐतिहासिक तथ्य भी हमारे सामने आता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि भर्तृहरि कोई महत्व-पूर्ण राजा था, जिसे बाद में अपने पंथ के प्रसार का नाथों-सिद्धों ने माध्यम बना लिया।

गुगा गाथा में भी अनेक ऐतिहासिक तथ्य निहित हैं। गुगा गाथा हिमाचल प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों—मण्डी, कांगड़ा, हमीरपुर, ऊना, चम्बा, सोलन एवं बिलासपुर में थोड़े-बहुत परिवर्तनों के साथ प्रचलित है। इसके साथ ही पंजाब, हरियाणा, राजस्थान में भी गुगा गाथा गाने की प्रथा है। आज गुगा गाथा में बहुत से धार्मिक तथ्य जुड़ गए हैं लेकिन इसके ऐतिहासिक तथ्यों से इन्कार नहीं किया जा सकता। गुगा चौहान वंश का राजा था। जिसका शासनकाल तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी था। इतिहासकारों का मत है कि गुगा की फिरोजशाह तुगलक के साथ लड़ाई हुई थी, जिसमें कि गुगा वीरगति को प्राप्त हुआ था। हिमाचल प्रदेश में यह गाथा तब प्रचलित हुई जबकि राजपूतों का पहाड़ी रियासतों पर अधिकार हो गया। यह समय सत्रहवीं शताब्दी का रहा है। इसलिए स्थान एवं काल सीमा के कारण इस गाथा के विषय में अनेक मतभेद हो गए हैं। मतभेदों के होते हुए यह सर्वसम्मत सत्य है कि गुगा राजस्थान का शासक था। गुगा ने मुसलमानों से लड़ाई लड़ी, जिसमें उसने मुसलमानों के हाथों से गऊओं की रक्षा की। गुगा का अपने मौसेरे भाइयों—अरजन-सुरजन से राज्य के लिए झगड़ा हुआ जिसमें कि गुगा ने उन्हें मार डाला था। विभिन्न स्थानों में यह गाथा ज्यों-ज्यों लोकप्रिय होती गई, इसमें अनेक स्थानीय तथ्य जुड़ते गए और यह धार्मिक बन गई।

यहां गुगा शब्द पर विचार कर लेना आवश्यक है। गुगा की माता रानी बाछल को गुरू गोरखनाथ ने गूगल फल (फल-विशेष) दिया था जिसके खाने पर गुगा ने जन्म लिया था। इसलिए गुगल से उत्पन्न होने के कारण इसका नाम गुगा पड़ा। गूगल, गूगअ, गूगा की प्रक्रिया से यह शब्द गुगा बना। गुगा नाम के विषय में वासुदेव शरण अग्रवाल के विचार हैं कि मध्यकाल में जो गायों की रक्षा के लिए प्राण तक देते थे वे गोगा कहलाते थे। और इस प्रकार गो ग्रह[1] (गो रक्षक) शब्द से (गोग्गह, गोग्गा, गोगा) इसका सम्बन्ध स्थापित करते हैं। अतः इस नाम के लिए गुगा के

---

1. शंकरलाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य पृष्ट 294

चारित्रिक गुणों को भी उत्तरदायी माना जा सकता है, क्योंकि उसने असंख्य गउओं की रक्षा मुसलमानों से की थी।

इस सम्बन्ध में दूसरा मत भी प्रचलित है। गुगा को "गुगा जाहरपीर" नाम से भी जाना जाता है। गुगा को हिन्दू और मुसलमान सभी देवता के रूप में मानते हैं। मुसलमान गुगापीर और हिन्दू गुगावीर कहते हैं। युद्ध विजेता को ही वीर एवं पीर नाम से अलग-अलग पंथो में माना जाता है। जाहरपीर का अभिप्राय है कि जो अपनी कला एवं चमत्कार दिखा दे और अपने भक्तों के कष्टों का निवारण कर दे। आलोचकों ने 'जहरपीर' नाम भी दिया है। अर्थात विष का देवता। गुगा के भक्त कभी भी सर्पदंश से पीड़ित नहीं होते। गुगा के लिए अनेक नामों का प्रयोग किया गया है लेकिन अधिकतर नाम विभिन्न पथों के द्वारा ही दिए गए प्रतीत होते हैं। मूल रूप से गुगा शब्द गुगल से ही बना है अर्थात जो गुगल से पैदा हुआ हो। गाथा में गुरू गोरखनाथ का रानी बाछल को गुगल देने का वर्णन इस प्रकार है :

बांओआं हत्थ झोलिया पांदा,
गुगल गुंधियां नकालियां।
एह लै माता इक फल देवोवां,
मुड़ो रंग मैहलां जायां।
एह लै माता इक फल देवोवां,
घोल कटोरिया पियां।
घोल कटोरिया पियां मेरी माता,
गर्भ रही जाह्गा घान।
एह फल मैं तिजो एड़ा देवावां,
हुंगा सिद्ध चुहाण।

गुरू गोरखनाथ ने बायां हाथ झोली में डाला और गुगल फल रानी को दे दिया। बाछल को कह दिया कि घर जाकर इस फल को कटोरी में घोल कर पी लेना। फल खाने से रानी बाछल गर्भवती हो जाएगी और उसके सिद्ध चौहान पैदा होगा। रानी बाछल गुरू गोरखनाथ की कई सालों से भक्ति किया करती थी। भक्ति पर प्रसन्न हो कर गुरु ने उसे दो फल देने स्वीकार किए थे, लेकिन फल प्राप्ति के समय बाछल की बहन काछल धोखे से उन फलों को ले गई थी और उनको खा लिया था। काछल गर्भवती हो गई। जिसके बाद में अरजुन सुरजन नाम के दो लड़के पैदा हुए। बाछल जब गुरु के पास आई तो पता चला कि काछल यहां आई थी और फल ले गई। तब गुरु ने बाछल को गुगल फल दिया और आशीर्वाद दिया कि अरजुन और सुरजन सारी उम्र गुगा के नौकर रहेंगे। उपर्युक्त तथ्य गुगा के जन्म, माता एवं उनके नामों पर प्रकाश डालते हैं।

गुगा का राज्य प्राप्ति के लिए अपने मौसेरे भाइयों के साथ युद्ध हुआ था। मौसेरे भाइयों ने मुगल बादशाहों, गुगा के नाना एवं मामा की सहायता ली थी। गुगा की उसके ससुराल वालों ने सहायता की थी। दोनों सेनाओं में भयंकर लड़ाई हुई थी। इस लड़ाई को इतिहास में 'दहीं राजपूतों' की लड़ाई कहा जाता है। क्योंकि गुगा के ससुराल वाले दहीं राजपूत थे। इस लड़ाई में गुगा ने मामा 'झोजों' तथा नाना 'पथौरी बादशाह' के सेनापति 'शेख मलार' को मौत के घाट उतार दिया था और बादशाह की फौजें दिल्ली भाग गई थीं।

इसके पश्चात गुगा की अपने मामा पृथ्वी चन्द, आलम चन्द तथा नाना पथौरी से भी लड़ाई हुई। गुगा ने इन सबको मौत के घाट उतार दिया। अरजुन और सुरजन गुगा के कुल पुरोहित की कपिला गाय को लेकर मुसलिम बादशाह की सहायता से गजनी भाग गए। गुगा कपिला गाय को लेने गजनी गया। वहां उसने अरजुन सुरजन को मारा और गाय को वापिस ले आया लेकिन रास्ते में 'हीरा डमेट्ट'[1] नामक व्यक्ति ने गुगा का सिर धोखे से काट लिया और इस प्रकार उसकी मृत्यु हो गई।

गुगा की मौत के विषय में भी मतभेद हैं। दूसरे मत के अनुसार विजय के पश्चात जब गुगा ने माता बाछल को बताया कि अरजुन और सुरजन दोनों लड़ाई में मारे गए हैं तब मां बाछल ने उसे धिक्कारा और मुंह न दिखाने की आज्ञा दी। गुगा ने दोनों भाइयों का दाह-संस्कार किया और पृथ्वी माता से भूगर्भ समाधि की प्रार्थना की। बसुंधरा से एक अमानुषी वाणी हुई कि भूगर्भ समाधि केवल मुस्लमान को ही मिल सकती है, हिन्दू को नहीं। गुगा "मक्का-मदीना"[2] गया और रतन हाजी से कुरान की कलमें सीखीं। उसके पश्चात् धर्म परिवर्तन के साथ गुगा वापिस आया। माता वसुंधरा ने तदुपरांत धर्म परिवर्तन के साथ गुगा को अपने में लीन कर लिया। जिस स्थान पर गुगा लीन हुआ था, उस स्थान को गुगामढ़ी कहते हैं। आज भी गुगा की याद में गुगा मढ़ियां बनाई जाती हैं। इन पर प्रतिवर्ष भाद्रपद कृष्ण पक्ष की नवमीं को गुगा पूजन किया जाता है। इसके साथ आठ-दस दिन गुगा गाथा भी गाई जाती है।

गाथा में व्यक्त उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर हम ऐतिहासिक तथ्यों का अन्वेषण कर सकते हैं। यदि इसमें अन्धविश्वास और बाद में जोड़ी गई धार्मिक मान्यताओं को निकाल दें तो निम्नलिखित ऐतिहासिक निष्कर्षों पर पहुंच सकते हैं :

1. गुगा एक ऐतिहासिक शासक था। जो राजस्थान में (मारु देश) बीकानेर के समीप ददेरा नामक ग्राम में पैदा हुआ था।
2. गुगा का सम्बन्ध राजपूत चौहान वंश से था।
3. गुगा की माता का नाम रानी बाछल था।

---

1. देवराजशर्मा, गुगा जहारपीर, पृ. 28
2. देवराजशर्मा, गुगा जाहरपीर, पृ. 26

4. गुगा के दो मौसेरे भाई अरजुन और सुरजन थे। उनकी माता का नाम काछल था।

5. राज्याधिकार के लिए गुगा एवं उसके मौसेरे भाइयों में युद्ध हुआ था। युद्ध में दोनों मौसेरे भाई मारे गए थे।

6. मौसेरे भाइयों की मृत्यु से दुःखी हो कर माता बाछल ने गुगा को धिक्कारा था।

7. गुगा एक महान वीर योद्धा था जिसने अपनी वीरता से दूर के प्रदेशों को प्रभावित किया था।

8. गुगा की मुसलमानों से लड़ाई हुई। उसने मुसलमानों के हाथों गायों की रक्षा की थी।

9. सम्वत 1440 में फिरोजशाह तुगलक के समय ददेरा पर आक्रमण होने का उल्लेख मिलता है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इसी समय गुगा वीर गति को प्राप्त हुआ था।

10. गुगा का व्यक्तित्व कुछ इस प्रकार का था कि उसे हिन्दू और मुसलमान दोनों चाहते थे।

11. अत्याचारियों से रक्षा के कारण हिन्दू उसे गुगा वीर और मुसलमान उसे जहारपीर के नाम से पूजने लगे।

'नूरपूरा रा राजा जगता' लोकगाथा भी हिमाचल प्रदेश की एक प्रमुख लोक गाथा है। इसका बिलासपुर जन-जीवन में काफी प्रचलन रहा है। यह लोक गाथा ऐतिहासिक घटना पर आधारित है। राजा जगत पठानिया अपने समय का योग्य एवं कुशल शासक था। उसने अपनी शूरवीरता के कारण अनेक शासकों को पराजित किया था। यह लोकगाथा क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी सर्वव्यापी बन गई है। मुख्य रूप से यह हिन्दू और मुसलमान चेतना को अभिव्यक्त करती है। अपनी शासन व्यवस्था और कार्य कुशलता के कारण राजा जगत पहाड़ी शासकों में बहुत शक्तिशाली और प्रसिद्ध हो गया था। ईर्ष्या एवं द्वेष वश किसी निकटवर्ती शासक ने जगत पठानिया के विरुद्ध मुगल शासक को शिकायत कर दी कि राजा बहुत अभिमानी हो गया है। इसलिए राजा के घमंड को चूर करना चाहिए। मुगल बादशाह ने जब पठानिया को चुनौती दी तो जगत पठानिया ने उसे साहस के साथ स्वीकार किया। मुगल शासक और जगत पठानिया के मध्य भयंकर युद्ध हुआ जिसमें कि जगत पठानिया को विजय प्राप्त हुई। राजा जगत पठानिया ने काबुल के राजकुमारों को भी युद्ध में पराजित किया था। लोक गाथा में जगत पठानिया के बाप-दादा का स्पष्ट वर्णन हुआ है। गाथांश प्रस्तुत है :

सुणां ओ भाई नूरपूरा विच,
हुआ राजा जगत पठाणिया।
कर्म चन्दा रा पुत्र,
तारा चन्दा रा पोता।
पूरियां रा था दित्ति रा,
पूरियां घड़ियां रा था जम्यां।

नूरपुर में एक बहुत ही शक्तिशाली राजा हुआ। जिसका नाम जगत पठानिया था। वह भगवान की कृपा से पैदा हुआ था और उसके भाग्य में राज्य करना ही लिखा था। उसके पिता

का नाम कर्म चन्द और दादा का नाम तारा चन्द था। कर्म चन्द का शासन काल पन्द्रहवीं शताब्दी रहा है। इसने 1420 ई० से 1435 ई० तक शासन किया। कर्म चन्द ने ही 'हरिपुर' राज्य की नींव रखी थी। कर्म चन्द ने भी कई शासकों को युद्धों में पराजित किया था। लोक गाथा में जगत पठानिया के भाग्यशाली होने के भाव इस प्रकार मिलते हैं :

भागां रा तूं बली,
पैरें तेरे चक्र
मत्थे नागण आई,
राजा तेरी बड़ी कमाई।

राजा बहुत ही भाग्यशाली था। उसके पैरों में चक्र और मस्तक पर नागिन की छाया थी। गाथा में मुगल बादशाह का वर्णन भी आया है :

पूरियां ताकतां देखी नें,
तेरी चुगली...
नली बाछाह् गे लगाई।

राजा की बढ़ती हुई शक्ति को देखकर किसी ने नली बादशाह से शिकायत कर दी। लोक गाथा के अनुसार उस समय मुगल बादशाह 'नली' का शासन था। जगत पठानिया को मुगल बादशाह के साथ युद्ध लड़ना पड़ा, जिस युद्ध में जगत पठानिया को विजय प्राप्त हुई। युद्ध के समय जगत पठानिया ने दिल्ली में लूटमार मचा दी और सोने चांदी को लूट लिया। गाथांश प्रस्तुत है :

ढाई घड़ियां दिन रए,
फौजां सहरा च गइयां।
स्यूना-चांदी कुल मुकाया,
होर नी छूया कुछ बी।
लुटदे-लुटदे दिन पहर चढ़या,
दिलिया च हाय-हाय मची गई।

ढाई घड़ी दिन बचा था कि राजा जगत की सेना दिल्ली पहुंच गई। दिल्ली में पहुंचकर सेना ने समस्त सोना चांदी लूट लिया। सोनाचांदी लूटते-लुटते दिन पहर भर चढ़ गया था। सारी दिल्ली में हाहाकार मच गई थी। राजा जगत ने काबुल में जाकर वहां के राजकुमारों को भी युद्ध में परास्त किया था। काबुल राजकुमारों के साथ युद्ध का वर्णन गाथा में इस तरह हुआ है :

जांदा-जांदा काबुल पुज्या,
जाई ने काबुल डेरे लगाए,
फौजां लड़दियां जोरो जोर,
ओ जी बाई टिक्के काबला रे मोर,
इक बी सामणें नी आया।

चलते-चलते राजा जगत की सेना काबुल पहुंच गई और काबुल में डेरा डाल दिया। दोनों ओर से सेनाओं ने युद्ध किए। युद्ध में कई मुसलमान सैनिक तथा बाईस राजकुमार मारे गए। एक भी राजकुमार युद्ध का सामना नहीं कर सका। इस तरह से राजा जगत ने वहां पर विजय प्राप्त की।

यह गाथा राजा जगत पठानिया के चरित्र, शासन-व्यवस्था तथा युद्ध-नीति को चित्रित करती है। इसके साथ ही राजा जगत की वंश परम्परा पर भी प्रकाश डालती है। यह लोक-गाथा नूरपुर क्षेत्र विशेष के राजा से सम्बन्धित होने के बावजूद आसपास के अन्य क्षेत्रों में भी लोकप्रिय हो गई है। इसमें स्थानीयता एवं क्षेत्रीयता के स्थान पर राष्ट्रीयता एवं हिन्दूत्व की भावना अभिव्यक्त हुई है। यह लोक गाथा हिन्दू एवं मुसलमानों के संघर्ष को प्रस्तुत करती है, जोकि तत्कालीन युग की मुख्य समस्या रही है। राजा जगत ने मुसलमानों से ही अपने क्षेत्र को मुक्त कराने के लिए युद्ध किए। इस तरह से कहा जा सकता है कि यह गाथा प्राचीन ऐतिहासिक परिवेश, राष्ट्रीता एवं जातीय गुणों को यथार्थ रूप में प्रस्तुत करती है।

'गढ़ मलौणा रा' नामक लोकगाथा भी अनेक ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकाश में लाती है। यह लोक गाथा मुख्य रूप से राजा गंभीर चन्द और हिण्डूर (नालागढ़) शासक के मध्य हुए ऐतिहासिक युद्ध को प्रस्तुत करती है। गंभीर चन्द अपने युग के महान शासक वीर चन्द का भाई था। वीर चन्द ने बिलासपुर राज्य की नींव रखी थी। उस समय यह राज्य कहलूर नाम से जाना जाता था। वीर चन्द का शासन काल 697 ई० से 730 ई० तक रहा है। वीर चन्द का गंभीर चन्द के अतिरिक्त कबीर चन्द नाम से एक भाई और था। वीर चन्द के शासन काल में यहां बहुत उन्नति हुई थी। वीर चन्द ने तत्कालीन कई राजाओं को अपने प्रभुत्व में ले लिया था।

'गढ़ मलौणा रा' नामक लोक गाथा में बिलासपुर के शासक गंभीर चन्द की शासन व्यवस्था तथा हिण्डूर (नालागढ़) की रानी बसोहली के सेनापतियों के मध्य हुई लड़ाई का भी चित्रण है। इसके साथ ही बिलासपुर की सुरम्य स्थली तथा लोगों की शूरवीरता का भी वर्णन है। कहलूर के सैनिकों ने हिण्डूर के सैनिकों को पराजित कर दिया था। गाथा में बिलासपुर की मोहकता तथा शासक के यश का गान इस तरह हुआ है :

इक बिलासपुरा रा सहर सुहाणा,
ठण्डा सतलुजा रा पाणी,
परजा तेरी राजा पाणी पींदी,
साहबा री फेरदी दुहाई।

एक तो बिलासपुर का शहर बहुत ही सुहावना और मन को मोहने वाला है, दूसरे यहां सतलुज का ठण्डा पानी मन को शांति देता है। यहां की प्रजा सतलुज का शीतल पानी पीती है और राजा की दुहाई देती है। राजा के यश, गान, मान और सम्मान को देखकर ही हिण्डूर

शासक के मन में ईर्ष्या एवं द्वेष का भाव जग उठा था। जिसके परिणाम स्वरूप उसने बिलासपुर पर आक्रमण करने की योजना बनाई थी। गाथा में बिलासपुर के शासक के प्रमुख सेनापतियों एवं मुख्य सैनिकों का वर्णन इस तरह हुआ है :

राजा बोले देख पम्मया,
बजीर तूं दित्ता बणाई।
हुक्म होया था राजे रा-
पम्मे छांटे सपाह्ई,
निक्कू, नोगलू, अमरू,
संगालु ढाई धड़े चंदेल,
कन्ने छत्ति धड़े संघाल।

राजा ने पम्मा को कहा कि तूं मेरा बजीर है। हिण्डूर की सीमा पर जाकर तुझको सारे गढ़ (किले) गिराने हैं। राजा की आज्ञा पर पम्मा ने निक्कू, नोगलू, अमरू नामक व्यक्तियों के साथ ही चन्देल और संघाल जाति के सैनिकों को अपने साथ लिया। तत्कालीन प्रमुख सेनपति 'बीरिया' का नाम लोकगाथा में इस प्रकार चित्रित हुआ है :

बीरिया बोले —
सुणों मेरे भाई,
बदला लेणा—
असां अज्ज जाई।

बीरिया ने अपने सैनिकों को कहा कि आज हम हिण्डूर पर आक्रमण करेंगे और अपमान का पूरा बदला लेंगे। हिण्डूर की रानी तथा उसके सेनापतियों का उल्लेख भी लोक गाथा में हुआ है :

राणी बसोहली थी बड़ी आकल,
नामी तिसे सदाए सपाह्ई।

रानी बसोह्ली बड़ी विदूषी और चतुर थी। उसने युद्धवीर सैनिकों को बुलाया था। लेकिन हिण्डूर के सैनिक कहलूर के सैनिकों के आगे जम नहीं सके। हिण्डूर का एक सैनिक युद्ध मैदान छोड़ कर वहां से भाग गया। गाथा में इसका वर्णन इस प्रकार है—

हिम्मत चन्द ओथी ते नठ्या,
मुंहडे पर लेइयां सोजां कमाणा।

हिण्डूर का सैनापति हिम्मत चन्द तीर-कमान को कंधे पर उठाकर मैंदान से भाग गया। इस युद्ध में हिण्डूर सैनिक हार गए और बिलासपुर के सैनिकों को विजय प्राप्त हुई थी। लोक-गाथा में इसका वर्णन इस प्रकार है :

तिने देख्या जोस कहलूरियां रा,
ओ जी सैह् होये फेटया नसाणें।
लड़ी-लड़ी ने सारे हण्डूरिये मारे,
ऐ सुणीं ने बिलापुरा बज्जे नगारे।

जब हिण्डूर के सैनिकों ने बिलासपुर-सैनिकों का उत्साह देखा तो वे मैदान छोड़कर भाग गए। बिलासपुर के सैनिकों ने बचे हुए हिण्डूरी सैनिको को मौत के घाट उतार दिया। विजय की खबर सुनकर बिलासपुर में प्रसन्नता के नगारे बजाए गए।

हिण्डूर के शासक ने जब बिलासपुर पर आक्रमण करने की योजना शुरु की तब सर्वप्रथम सीमा पर मोर्चेबन्दी आरम्भ कर दी। इस अभियान में सर्वप्रथम 'मलौण' नामक स्थल पर एक बड़ा भारी किला बनाया गया था। लोक-गाथा में इसका वर्णन इस प्रकार हुआ है :

कलां छेड़िया अन्दर हण्डूरे,
लाया गढ़ मलौण चनाणें।
गढ़ तैयार होई गया था,
कली चूना गढ़ा पर ढाल्या।

हिण्डूर के शासक ने युद्ध करने की पूरी तैयारियां कर ली थीं। 'मलौण' नामक स्थल पर किला बन गया। कहलूर के शासक को युद्ध का पता तब लगा जब गढ़ बनकर तैयार हो गया था। किला दूर से एक चमकते हुए तारे के समान दिखाई देता था।

अतः कहा जा सकता है कि उपर्युक्त विभिन्न लोक-गाथाएं क्षेत्र विशेष के इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। इन गाथाओं में शासन व्यवस्था, सैनिक व्यवस्था, धार्मिक अवस्था, आर्थिक अवस्था एवं विभिन्न शासकों की परस्पर लड़ाई का वर्णन भी मिलता है। कई लोक गाथाओं में तत्कालीन सेनापतियों, सैनिकों एवं प्रमुख स्थानों का उल्लेख भी हुआ है। 'गढ़ मलौण रा' बिल्कुल क्षेत्रीय लोकगाथा है। इसके माध्यम से क्षेत्रीयता ही अधिक प्रकट होती है। यह युद्ध केवल ईर्ष्या एवं द्वेष के कारण ही हुआ था इसलिए यह गाथा क्षेत्रीयता महत्व की ही बनकर रह गई। लेकिन अन्य लोक गाथाएं इतनी लोकप्रिय हैं कि क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित होते हुए भी सर्वव्यापी बन गई हैं और विभिन्न क्षेत्रों के ऐतिहासिक पक्षों को सरल एवं सहज रूप में व्यक्त करती हैं।

रिसर्च एसोसिएट हिन्दी विभाग,
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-171 005

लोक संस्कृति

ऐसे मनाई जाती है चम्बा में लोहड़ी

● रमेश जसरोटिया

बडी-बड़ी मशालों का समूह जिसे स्थानीय भाषा में मुसारा' कहते हैं, चौगान में पहुंचता है और डाकघर के समीप जल रही लकड़ी की टाल (चियाणा) को छूने का प्रयत्न करता है, उस टाल के समीप डण्डों और पत्थरों से लैस लोग हमला करके समूह को भगाने का प्रयास करते है ताकि समूह उस चियाणे को न छू सके। पर समूह बाजिद है। वह भी उन हमलावरों का मुंह तोड़ जबाव देता है। लघु युद्ध का दृश्य है। मुसा'रे टूट जाते हैं। लोगों के सिर फट जाते हैं। कुछ बेहोश हैं। साथ के लोग उन्हें चिकित्सा सुविधा के लिए उठाकर भागते हैं। कुछ लोगों की हालत पतली है। पर आज सभी निडर हैं। आज उन पर कोई मामला दर्ज नहीं हो सकता, उनका कोई कुछ नही बिगाड़ सकता। क्योंकि आज लोहड़ी है। वर्ष भर की दुश्मनी निकालने का सुनहरा अवसर।

यह दृश्य आज से लगभग पचास वर्ष पूर्व का है और स्थान है—प्रसिद्ध पहाड़ी रियास्त चम्बा। आज भले ही यह तत्थ पाठकों को आश्चर्यचकित करे पर राजाओं के समय में चम्बा की लोहड़ी इसी तरह की थी। सभी को यह अधिकार प्राप्त था कि लोहड़ी की पूर्व रात्रि को मनमर्जी से हमला और बचाव करें। यदि किसी की हत्या हो जाती तो हत्यारे पर हत्या मुकद्दमा नहीं चल सकता था।

यूं तो हिमाचल और पंजाब में लोहड़ी मनाए जाने की प्रथा है पर चम्बा की लोहड़ी एक अलग आकर्षण रखती है। प्रत्येक वर्ष पौष माह की सक्रान्ति को समस्त चम्बा शहर (नए बसे या कुछ क्षेत्र विशेष को छोड़कर) चौदह भागों में विभक्त हो जाता है। इन्हें **मढ़ी** कहा जाता है। प्रत्येक **मढ़ी** का अपना क्षेत्र होता है और प्रतिवर्ष ये मढ़ियां अपनी-अपनी मढ़ी से एक प्रमुख चुनती है जिन्हें **सरझाड़** कहते हैं। क्षेत्र के लगभग पन्द्रह या कम वर्ष के लड़के इसके सदस्य बन सकते हैं। एक मढ़ी में पूरे मुहल्ले का क्षत्र सम्मिलित होता है। प्रत्येक मढ़ी के लड़के प्रतिदिन अथवा हर तीसरे दिन अपने मुहल्ले के प्रत्येक घर में जाकर लकड़ियां और वर्षा वाले दिन मक्की के दाने मांगते हैं।

लकड़ियां मांगते समय एक लड़का मुख्या बोल बोलता है बाकी विभिन्न स्वरों में उसका समर्थन करते हैं जैसे :—

मुख्य स्वर—इक घड़ी बिच परबत लाणा
बाकी स्वर- घेरणी...
मु० स्व०—चूड़िरां दा छज्ज पराणा
बाकी स्वर—घेरणी...
मु० स्व०—जुलाह ग्लांदा झट्टी मुट्टी
बाकी स्वर—घेरणी...

इसी तरह लम्बे क्रम तक यह बोल गाए जाते हैं। अन्त में एक लड़का 'टूट-म-टूटा' कहेगा बाकी लकड़ी दी डाली सुट्टा कहेंगे। इस प्रकार के कई गाने हैं। मक्की के दाने मांगने के लिए वह अलग गीत इस प्रकार है :—

मुख्य स्वर—खड्डे खाणे
बाकी स्वर—घांणदे
मुख्य स्वर—मढ़ी पुजाणे
बाकी स्वर—घांणदे
मुख्य स्वर—शिवा जो चढ़ाणे
बाकी स्वर—घांणदे
मुख्य स्वर—तुसां जो खुआणे
बाकी स्वर—घांणदे
मुख्य स्वर—टूट-मटूटा
बाकी स्वर—कुकड़ी री माणी सुट्टा

इसी प्रकार यह कार्यक्रम मास भर चलता है। लकड़ियां सरझाड़ के घर जमा की जाती हैं और मक्की के दाने उसी दिन भुना कर आपस तथा उपस्थित जनों में बांट दिए जाते हैं। जिस घर में लकड़ी अथवा मक्की देने में आनाकानी की जाती है वहां सभी लड़के यह नारा लगाते हैं :—

जन्दरे उप्पर जन्दरा, ए घर चन्दरा

अर्थात ताले ऊपर ताला है, यह कमीना घर वाला है। लकड़ियां मांगने के पश्चात प्रतिदिन सभी लड़के अपनी-अपनी मढ़ी में एकत्रित हो जाते हैं। फिर मढ़ी के एक तरफ निर्धारित स्थान पर जलाने के लिए लकड़ियां, पत्तियां आदि चुनने चले जाते हैं। इसे भम्भूड़ कहते हैं। सदस्यों द्वारा इकट्ठा किए इस भूम्भूड़ को आग लगा दी जाती है और सभी उपस्थित जन आग के चारों ओर खड़े होकर हाथ मटीट्टू खेलते हैं अर्थात एक लड़के की आंख बन्द कराकर उसका हाथ आगे करा दिया जाता है। बाकी लड़के बारी-बारी से उसके हाथ में मारते हैं। यदि आंखें बन्द वाला लड़का मारने वाले को पहचान ले तो आंखें बन्द करवाने की बारी बदलकर मारने लड़के वाले की आ जाती है।

कभी-कभी इतवार को या छुट्टी वाले दिन प्रत्येक मढ़ी के लड़के आस-पास के गांवों में अनाज मांगने जाते हैं। इस इकट्ठे किए अनाज को बेचकर उसके पैसे जमा कर लिए जाते हैं। यह कार्यक्रम पौष मास के अन्तिम तीन दिनों को छोड़कर अर्थात अठाईस उनतीस दिन चलता है। लोहड़ी से दो दिन पहले **निक्का जागरा** (छोटा जगराता) और एक दिन पूर्व **बड्डा जागरा** (बड़ा जगराता) मनाया जाता है। इन दो दिनों में सिर्फ मक्की के दाने ही मांगकर भुनाए जाते हैं। लड़कों को मम्भूड़ इकत्रित नहीं करना पड़ता। महीना भर मांगी गई लकड़ी या किसी घर द्वारा महीने भर लकड़ियां न देने के एवज में दिए एक ठेले (लकड़ी के ठूंठ) को निक्के और बड्डे जागरे वाले दिन जलाया जाता है। निक्का जागरा अर्धरात्रि और बड्डा जागरा सारी रात जागकर गाते बजाते काटा जाता है। बड्डा जागरा मनाने के पश्चात प्रत्येक मढ़ी के लड़के प्रातः काल झुरमुटे मे उन चौदह मढ़ियों के क्षेत्र में पैसे मांगने के लिए निकल जाते हैं। दोपहर तक प्रत्येक घर से पैसा एकत्रित किया जाता है। हर घर अपनी सामर्थ्यानुसार धन देता है। इस मांगने को **कठोरा** कहते हैं। मांगते समय लड़के सामूहिक रूप से यह कहते हैं :—

होंकर-होंकर गभरुओ, काठोरा

इक रुप्पया राखोरा

देओ जी टका धेली

दोपहर पूर्व सभी लड़के अपनी-अपनी मढ़ी में लौट आते हैं। इसके पश्चात मुसा'रों के लिए लकड़ी लाने चले जाते हैं। पहले राजा की तरफ से लकड़ियां उपलब्ध कराई जाती थीं पर अब यह कार्य नगर पालिका करती है। मुसा'रों के लिए सात मढ़ियों को ही लकड़ियां दी जाती हैं। ये पुरुष मढ़ियां हैं। बाकी की सात मढ़ियां औरतें मानी जाती हैं। सबसे बड़ी राजमढ़ी है फिर बजीर, फिर कोतवाल और इसी क्रम से आगे इनका विभाजन हुआ है। इन्हीं सात मढ़ियों नर को छोटे जागरे वाले दिन से बजाने के लिए नगारे भी दिए जाते हैं। लकड़ियां प्राप्त करने के पश्चात बारी आती है मुसा'रा बनाने की। मुहल्ले के वरिष्ठ और अनुभवी व्यक्ति मुसा'रा बांधते हैं। राज मुसा'रा त्रिमुखी, बजीर मुसा'रा दोमुखी और बाकी एक-एक मुखों वाले बनाए जाते हैं। सबसे पहले राज मुसा'रा अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है। इस मुसा'रे को कर्मकाण्डी पण्डित द्वारा जीवादान दिया जाता है। मेढ़े की बलि के पश्चात मन्त्रोचारण किया जाता है। यह मेढा भी अब नगर पालिका द्वारा इसी मढ़ी को उपलब्ध कराया जाता है। फिर भगवान शंकर के नाम का जय जयकार कर बलिष्ठ व्यक्तियों द्वारा उसे उठाकर नगर परिक्रमा के लिए **फेरा** (यात्रा) प्रारम्भ किया जाता है। राजमढ़ी सुराड़ा मुहल्ला में है। यहां से बजीर मढ़ी अर्थात चौंतड़ा की तरफ फेरा पहुंचता है। चौंतड़ा से पहले राजनौंण नामक जगह में दोनों मुसा'रे आपस में मिलणी करते हैं। राज मुसा'रा आगे और बजीर मुसा'रा उसका अनुगमन करता कोतवाल मढ़ी (धोबी मुहल्ले) पहुंचता है। यहां जल रहे घियाणे में तीन बार राज मुसा'रा डुबोया जाता है। उसके पश्चात बजीर, तद्पश्चात कोतवाल मुसा'रा पहले दोनों के पीछे बनगोट्ठ मुहल्ले की तरफ चलता है। यह क्रम सात मढ़ियों तक चलने के पश्चात सारे मुसा'रे चौगान में पहुंचते हैं। आगे-आगे राज-मुसा'रा और पीछे अनुसरण करते बाकी छः नर मुसा'रे। चौगान में लहौर खाना मढ़ी में राज मुसा'रे को तो घीयाणे में डुबोने देते हैं पर बाकी के मुसा'रों को न डुबोने के लिए लड़ाई प्रारम्भ हो जाती है। यदि बाकी के मुसा'रों को उठाने वाले बहादुर हैं तो वे अपनी शक्ति से डूबा लेंगे अन्यथा उन्हें नारी मढ़ी वाले तोड़कर अपनी मढ़ी

के जलते चियाणे में फेंक देंगे। राज मुसा'रे को न तो तोड़ा जाता है न ही उस पर हमला किया जाता है। यदि किसी मढ़ी वाला यह कर देता है तो उसे अपने खर्चे पर पुन: उसी विधि से राज मुसा'रा उठाना पड़ता है जिस विधि से उसने अपनी मढ़ी से फेरा प्रारम्भ किया था। इस प्रकार राज मुसा'रा तेरह मढ़ियों का चक्कर लगा कर प्रात: लगभग चार बजे अपनी मढ़ी में वापिस पहुंचता है। बाकी के बचे हुए मुसा'रे को वहां जलाया जाता है। अगले दिन प्रत्येक मढ़ी के लड़के अपने-अपने सरभाड़ के घर जाकर अनाज को बेचकर तथा कठोरे में इकत्रित किए पैसों का आपस में बंटवारा करते हैं। राजमढ़ी के लड़कों को पैसों के साथ साथ काटे गए मेढे का मांस भी दिया जाता है। इस तरह समाप्त होता है यह महीने से चला आ रहा कार्यक्रम अगले वर्ष के लिएं।

यह पर्व अपनी धार्मिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के साथ साथ राजाओं के समय का इतिहास और विचार प्रक्रिया भी लिए हुए है। हालांकि जहां भी लोहड़ी मनाई जाती है, उसके मनाने की प्रक्रिया लगभग एक समान है पर मुसा'रे वाली बात सिर्फ चम्बा में ही देखने को मिलती है। नाथ पंथी चरपट सिद्ध चम्बा के संस्थापक राजा साहिल वर्मन के राजगुरु थे। लगभग समस्त चम्बा क्षेत्र शैव परम्परा पर विश्वास रखता है। राजमढ़ी के प्रांगण में भगवान शिव का लिंग है और राज मुसा'रा भगवान शिव का प्रतीक माना जाता है। सात नर मढ़ियां लिंग हैं और नारी मढ़ियां योनी।

इसके अतिरिक्त राजशाही में सीमित आर्थिक साधनों के कारण दुश्मनों पर हमला करने और रोकने का प्रशिक्षण, मुसा'रे वाली प्रक्रिया से आसानी से हासिल किया जा सकता था। साथ ही मनोरंजन के सीमित साधन होने के कारण यह पर्व लोगों को प्रफुल्लता प्रदान करने का सशक्त माध्यम भी था।

पर खेद की बात है कि आज यह पर्व दम तोड़ रहा है। न तो इसे कोई प्रोत्साहन मिल रहा है और न ही स्थानीय निवासियों का पहले जितना संवेदनात्मक जुड़ाव रहा है। प्रत्येक मढ़ी के निवासी पहले मुसा'रे के साथ जाना अपना धर्म समझते थे, आज घर में सोना। धीरे-धीरे गल रही इस सांस्कृतिक थाती को सुरक्षित रखना अत्यवश्यक है। ऐसा माना जाता है कि यदि संस्कृति समाप्त हो जाए तो समझो सभी कुछ समाप्त है।

हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी,
शिमला-171 001

धौलाधार का चितेरा सरदार सोभा सिंह

● चरणजीत सिंह

काल के अन्तराल, धरातल पर उपजा हुआ एक खेत गुलाब, जिसकी पंखुड़ियां महागंध करती हुई बिखेरती हैं, समेटती हैं उन अलौकिक प्रभात कि हेमरश्मि से अनुरंजित, नन्हीं-नन्हीं ओस की बूंदों को व्योम की ओर मुंह खोले हुए, जिसके सेवन मात्र से मानव का हृदय विमोर हो उठता है। किसी प्रिय अनन्त में ऐसे हैं मेरे परम पूज्य गुरुदेव जी एवं कला-मर्मज्ञों, पारखियों के विख्यात सहृदय चित्रकार शोभा सिंह जी जिनके होठों पर हमेशा तैरती रहती है, तितलियों की उड़ान की तरह मधुर शिशु-मुस्कान जिसके मधुर प्रवाह में प्रवाहित हो जाता है, मानव का निर्मम, बोझिल हृदय। उनके प्रियजन उन्हें दार जी के नाम से भी जानते हैं। उनके व्यक्तित्व की मधुरता का रहस्य है एक ही समय में उनके व्यक्तित्व में पलता हुआ नवजात शिशु, पच्चीस साल का तरुण और गम्भीर जिन्दगी के रहस्यों को खोलता हुआ एक दार्शनिक।

दार जी की आलोक पूर्ण दृष्टि मानव आत्मा के गहन असख्य अंधकार को एक ही स्पर्श में पी जाती है। उनकी वाणी में है सप्तसुरों की भैरवी जिसके आलाप से मानव के भीतर का सोया हुआ अद्भुत गीत जाग उठता है। शिवालिक, हिमलिक तथा हिममुख की तरह है उनका पूर्ण व्यक्तित्व, जिसकी शीतलता में मानव की कलान्ति पूर्ण आत्मा कुछ क्षण विश्राम करने के लिए रुक जाती हैं।

उनके विषय में लिखते समय मुझे याद आते हैं अतीत के अद्वितीय मधुर क्षण, मानों आज भी कांगड़ा-वादियों में बिखरी हुई श्वेत बारिश की टुकड़ियों की तरह तैर रहें हैं। उन दिनों पापा जी (स्व० पृथ्वीराज कपूर) ने अपनी शैली में कहा था 'भाई साहब, मेरे अन्दर श्मशान जलता है जिसको शीतल करने के लिए मैं महानगरी से भाग आता हूं आपके पास' और आगे कहा 'मैं उस महानगरी में रहता हूं जो गहन प्रगाढ़ धुएं के आधिक्य में विलीन होती चली जा रही है। वह धुआं जो आज तक किसी की मुट्ठी में न समा सका।' अहा... वह उन दिनों के मधुर क्षण, जब वह मेरे कंधों पर हाथ रख कर मुझे प्रकृति से अवगत कराते थे। प्रकृति के साथ एकलय होने के लिए प्रेरित करते थे। उन दिनों का वह दुलर्भ अप्रत्याशित तथा स्मरणीय क्षण जब उन्होंने मुझसे पूछा था 'तुम किस विषय पर केन्द्रित होना चाहते हो - ललित कला या व्यवसायिक कला। लोकामत तत्व की सीमा को समझना मेरी शक्ति से बाहर था फिर मेरे मुंह से निकल पड़ा— ललित कला।

दार जी के चेहरे पर पड़ी हुई मुस्कराहट की लालिमा दार्शनिकता के गेरुए रंग में परिवर्तित हो गई। वह थोड़ा सा रुक कर एवं स्वाभाविक शैली में विशेषत: मनोवैज्ञानिक शैली में बोले— आज से अपने भीतर के साथी को आप अपना अग्रज मानिए, जिसके ऊपर पड़ी हुई मिट्टी की तहें प्रकृति के अदृश्य हाथों से साफ हो जायेंगी और फिर उपजेगा आपके अन्तर से एक महा-आनन्द का झरना, जिसमें बह जाएगी आपकी अन्तर्द्वन्द्वता।

फिर उन्होंने मुझे प्रकृति के हवाले छोड़ दिया। मैं सारा-सारा दिन आर्द कूट से किल-कारियां करता हुआ पानी का चित्रण करता। जहां कई युवतियां अनसंवरे कपड़ों में घाट पर बैठी पत्थर के टुकड़ों से पांव मांजती हैं...... तो एक लड़की जो घर के आंगन में पत्थर की ओखली में लकड़ी के मूसल से मकई कूटती है और पहाड़ी मां अपने शिशु को छाती से लगाए दूध पिला रही हैं। शिवालिक कोख से जन्मी उन छोटी-छोटी तेज नदियों का चित्रण करता जिनके किनारों पर बैठे गद्दी टोले अपनी भेड़ों के आंचल में बैठकर दिन को रसोई बनाते हैं। परन्तु मैं प्रकृति के आनन्दमय रहस्य को नहीं समझ सका, अज्ञानता और उम्र के प्रभाव के कारण। जब मेरे समझने की शक्ति सूक्ष्म हुई तब यह समझ में आया कि झरनों का यह कर्कश, उग्र तथा भयानक शोर नहीं बल्कि एक अद्भुत कोमल संगीत है। ऊंचे-ऊंचे देवदार के वृक्षों के झुंडो में से सनसनाती हुई वायु जिसके स्पर्श से सिहर जाती है, किसी अनछुई लड़की की तरह यहां की नदियां। और किसी अलौकिक मस्ती में नृत्य करते हुए शिवालिक हिमशिखरों में एक प्रकार की अतुल दिव्य आकृति प्रतीत होने लगी। लेकिन तब तक किसी कारणवश घर लौटना पड़ा मुझे।

मेरे बचपन के वे चार वर्ष दार जी के सद्जीवन और प्रकृति की गोद में चित्रण करते बीत गये। जब मैं गुरुदेव जी के आश्रम में कला सीखने के लिए गया था तो उस समय सिर्फ अपने बाहरी रूप को जानता था। लेकिन गुरुदेव जी का स्नेह और मेरे साथ जगह के महात्म ने लौटते समय मेरे एक और निर्भीक साथी को भेजा और वह था मेरे अन्दर का चरणजीत। यह गुरुदेव जी जो पूर्ण रूप से प्रकृति पुत्र है, की अनुपम भेंट थी जिन्होंने आज तक मेरे बाहरी चरणजीत को सुसज्जित आवरण में ढक कर सुरक्षित रखा है, गिरने नहीं दिया।

दार जी को सबसे प्रिय वह रंग है जिसमें सब रंगों का सम्मिश्रण हो और वे है निरा-कारता का रंग। वह जब भी मिश्रण करते हैं उसी रंग से। चाहे वह सोहनी-महिवाल हो या गुरुनानक देव जी। तभी तो गीता के इस श्लोक में उनकी पूरी धारणा है—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्माणि च कर्मयः। स बुद्धिमान्य बुस्येषु सयुक्त कृत्स्नकर्मकृत ॥

अर्थात दार जी प्रतिकर्म में ही अपने कर्म को देखते हैं और कर्म में ही अपनी प्रतिकर्मता को। उनके कर्म और प्रतिकर्म का लक्ष्य है एक निराकारता रंग से चित्रण करना। वह दिन मुझे खूब याद है। जब दार जी एक मुसलमान सूफी फकीर हजरत मोहम्मद मियां मीर जी का चित्र बना रहे थे। सो अचानक मेरे मुंह से निकल पड़ा, 'दार जी इस चित्र में तो गुरुनानक देव जी की छाया प्रतीत होती है।' स्वाभाविक हंसी के बाद वे कुछ रुक कर बोले 'चरणजीत जी क्या इनमें वह नूर नहीं है जो गुरुनानक देव जी में था, मैंने साफ देखा बोलते समय उनके चेहरे पर जो अब तक

विनोदता थी उसकी जगह गंभीरता ने ले ली थी। सचमुच इन शब्दों में उन्होंने हृदय की पूरी भावुकता, सहृदयता तथा जीवन मर्मस्पर्शनीय दशाओं के साथ हृदय के तादात्मय को उपस्थित किया। यह एक सफल कलाकार के स्वाभाविक लक्षण होते हैं।

दार जी के अनुसार 'श्रेष्ठ कला वह है जो हमें अपने अन्दर विलीन कर ले।' इस कथन के अतिरिक्त उन्होंने जीवन के अनेक सुकुमार भावात्मक प्रसंगों को अपने ललित कला के धागों में पिरोकर मानव मनोभावों की मार्मिक अभिव्यञ्जना कर अपनी भावुकता का पूर्ण परिचय दिया है। कोई भी चित्र उनका ऐसा नहीं जो हमें अपने अन्दर समाये बिना रह सकता हो। जैसे लास्ट रीजाइं। इस चित्र को देख मिथ्या और छल का सहारा लेने में सामने वाले मानव को कुछ कठिनाई होती है। उसे डर रहता है कि उसका वास्तविक मनोभाव उस चित्र में कहीं प्रतिबिम्बित न हो उठे। उनका सोहनी महिवाल कला परम्परा का सर्वाधिक प्रज्जवल मार्ग है जिसमें आध्यात्मिक प्रेम की धारा अपूर्व विस्तार के साथ प्रवाहमान होती है। उमरख्याम को तो देखने से लगता है मानो चित्र मधुशाला के मधुरस में से डुबो कर निकाला है। दूसरी ओर उषा की देवी के चित्र को देखने के बाद कला मर्मज्ञयों के अन्दर सुबह की माधुर्य खुमारी जन्म लेने लगती है वहीं दार जी के रोम रोम में बसे गुरु साहबों के चित्र में साफ दैविक शक्ति प्रतीत होती है। शायद ही कोई ऐसा हृदय होगा जो ये तैल चित्र को देखे और उसका हृदय गुंजार न करे।

शान्ति की लालसा, अवकाश की भूख, चित्रांकन का कौतूहल और प्रकृति की अकलुष सुषमा का मोह दार जी के रोम रोम में है।' उनकी आंखों में तैरते हुए पवित्र जल-बूंदों में वियोग और हर्ष का समिश्रण देखने को मिलता है। जिसकी पूर्णता में जीया जा सकता है। जैसे पश्चिमी कला के महान विशेषज्ञ Diochoysoton मूर्तिकार Phedia की ईसा ओलंपिया में मूर्ति के विषय में अपने विचार लिखते है—'जिस मनुष्य के शरीर में बुढ़ापा और मृत्यु का अभाव दिखाई देने लगा हो, जिसकी कलान्तिपूर्ण आत्मा दुश्चिन्ताओं और बदकिस्मती के झूले पर झूलते-झूलते थक गई हो और जो कभी भी सुखपूर्ण नींद नहीं सो सका, यदि वह कुछ क्षण तक इस मूर्ति के सामने मौन खड़ा रहे तो विनाशकालीन जीवन के सभी दुःखों को भूल जाता है।

दार जी की कलाकृति जीवन की विविधता से परिचित कराकर माननीय सद्गुणों के प्रति आश्वस्त करती है। वह बहुमुखी प्रतिभा के धनी चित्रकार हैं। उनमें वह त्याग है जो मनुष्य की क्षुद्र से क्षुद्र स्वार्थवृत्ति को क्षण में नष्ट कर देता है और अन्य कल्याणार्थों की ओर प्रेरित करता है। यह चाहे ललित कला हो या कोई अन्य कला।

चित्रांकन-उपलब्धियों की दृष्टि से दार जी ललित कला के अमर चित्रकार है। उनकी शैली पश्चिम से प्रभावित है। मानव प्रकृति के जितने रूपों के साथ दार जी के हृदय का भावात्मक सामंजस्य हम देखते हैं उतना किसी और चित्रकार में नहीं। मैं उनकी तुलना किसी अन्य कलाकार से करना नहीं चाहता। परन्तु इतना तो अवश्य कहूंगा कि उनकी चित्रकला को देख कुछ उच्चकोटि के चित्रकार याद आ जाते हैं। जिनमें प्रमुख हैं—सर्वश्री रवि वर्मा, एच० मजुमदार, एम० आर० अचरेकर, निकोलिस रोरिक, हर्ड तथा पंजाब के ही श्री एस० जी० ठाकुर सिंह। तथा दूसरी ओर पश्चिमी पुरातन पीढ़ी के कलाकार माईकल ऐंजलो, लियोनार्दो द विंसी, राफैल

तथा मांनेट बगैरह ।

आधुनिक काल में जो आज़ादी के बाद कला-क्षेत्र में क्रान्ति आई, वह नवीन प्रेरणाओं की तरंगें उठाता, कलाकारों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ता हुआ समय की गति के साथ आगे बढ़ता गया। किन्तु दार जी इस भाग दौड़ में पीछे रह गये। हुआ यह कि युवा पीढ़ी की प्रतिभा कला विशेष के क्षेत्र में बहती चली गयी। फिर भी दार जी ने उनका कभी अनादर नहीं किया। और वह हमेशा प्रशंसा किया करते थे जहां उन्हें करनी चाहिए थी।

हिमशिखों के झुंडों में बसा हुआ यह हिमाचल प्रदेश जहां आज भी मानवीय मूल्यों का सही आंकन है। यहां का नदी, पर्वत, वृक्ष लता एवं क्षेत्र आदि के साथ जुड़ी हुई आत्मीयता का सम्बन्ध केवल भौगोलिक ही नहीं बल्कि वंश परम्पराओं का भी है। सांस्कृतिक, साहित्यिक, अध्यात्मिक, नैतिक तथा ऐतिहासिक विरासत एक दूसरे से बंधी है। यही कारण है कि यहां की परम्परागत कला विशेषतः कांगड़ा और पहाड़ी चित्रकला, विश्व विख्यात है एवं इस कला-विषय का संग्रहण कौन सा ऐसा कला संग्राहलय है जहां सुसज्जित नहीं है? चाहे देश हो या परदेश।

दार जी को भारत सरकार ने पद्मश्री से अलंकृत किया है। लेकिन ऐसे पद्मश्री अलंकारों की आवश्यकता ऐसे प्रकृति के पुत्रों को नहीं होती। हिमाचल प्रदेश में बसे हुए इस महान योगी चित्रकार को जब भी अलंकृत किया है तो दूसरे प्रान्तों ने जिसमें पंजाब प्रान्त प्रमुख है। अपनी साहसिकता और ज्ञाननिष्ठा से दार जी ने जिन महत्वपूर्ण चित्रों का उद्धार किया है उनके संरक्षण का सर्व प्रथम अधिकार हिमाचल को ही है। फिर भी हिमाचल सरकार की इस सम्बन्ध में कुछ मजबूरियां होंगी कि उनकी कलाकृतियों का अपना नीजि संग्राहलय न बना सकीं। उनका चित्रांकन पल को चित्रित करना है और वह पल अपने आप में बड़ा यर्थाथ होता है। एक बात और उन्होंने काल और परिस्थिति से कभी भी समझौता नहीं किया। उनकी प्रतिभा की छाप काल के हृदय पर जो पड़ी हुई है दिन-प्रतिदिन ज्यादा उभर कर लोगों के सामने आयेगी।

अन्त में मैं यही कहना चाहूंगा कि हिमाचल-इतिहास में यह एक अमर नाम है। कला और संस्कृति विभाग से प्रार्थना है कि पहाड़ी शैली के साथ निकोलिस रोरिक, उनके पुत्र सत्य लीब रोरिक, सरदार शोभासिंह जी, अमृता शैरगिल के भी निजी संग्राहलय की स्थापना करे।

द्वारा मोहन स्टूडियोज़,
अंधेरी कुरला मार्ग
,चकला अंधेरी (पूर्व)
बम्बई ४०० ०९९

अभिजात्य संस्कृती के परिप्रेक्ष्य में लोक संस्कृती

● डॉ० अशोक जेरथ

संस्कृति शब्द जहां पर भी दृष्टिगोचर होगा वहीं पर एक उदात्त भावना जन्म लेगी। जो अच्छा है, श्रेष्ठ है वही सुसंस्कृत है, सभ्य है अन्यथा असंस्कृत और असभ्य है। सुसंस्कृत वही है जो आन्तरिक तौर पर व्यवहार कुशल है। यूं तो व्यवहार-कौशल का अन्तर और बाह्य दोनों सतहों पर जानना सभ्य व्यक्ति के लिए आवश्यक है यह व्यवहार कौशलता क्या है? इसी में संस्कृति का निहित है।

कुशल व्यवहार में सोच और उसकी प्रक्रिया का समन्वय रहता है। इसीलिए डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल--ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा को संस्कृति कहते हैं। दूसरी ओर स्वामी ओउमानन्द सरस्वती संस्कृति शब्द का सन्धि-छेद कर सम्+कृति को दो अर्थों से युक्त मानते हुए लिखते हैं कि सम् का अर्थ शुद्ध श्रेष्ठ ही है और कृति का अर्थ कार्य अथवा आचरण। अतः सामूहिक तौर पर संस्कृति का अर्थ होगा--श्रेष्ठ कार्य अथवा आचरण। (हरियाणा सांस्कृतिक दिग्दर्शन पृ0 99)। इसी परिभाषा से मिलती जुलती परिभाषा डॉ० गणेश भार्गव अपने शोध प्रबन्ध डोगरी लोक गीतों का सांस्कृतिक अध्ययन में देते हुए लिखते हैं—संस्कृति की निष्पत्ति सम् पूर्वक कृ धातु के भाव अर्थ में कितन् प्रत्य के योग से हुई हैं जिसका अर्थ हैं **परम्परागत अनुस्यूत संस्कार**- (पृ० 4) और संस्कार का अर्थ शोधन करना सुधार करना आदि लिखा गया है। संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी पृ0 1120 में के० एम० मुंशी संस्कृति शब्द की व्याख्या बड़े सरल ढंग से देते हैं—हमारे रहन सहन के पीछे हमारी मानसिक अवस्था जो मानसिक प्रकृति है जिसका उद्देश्य हमारे अपने जीवन को परिष्कृत, शुद्ध और पवित्र बनाना है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ती करना है वही संस्कृति है। (प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति खण्ड 2, पृ० 4)

जीवन के निरन्तर सुधार और परिष्कार के लिए चिन्तन की निरन्तर बहती सरिता में मानस का अस्नान होना बहुत आवश्यक है। इसी में निर्लिप्त मानव अलग अलग सोच के धरातल पर कला के अनेक आयामी पक्षों को पुष्ट करता चला जाता है। साहित्य इसका आधार है तो कलाएं इसका मापदण्ड। अतः किसी भी राष्ट्र की संस्कृति को उसके चिन्तन, दर्शन, साहित्य और सृजन के दूसरे माध्यमों के आधार पर आंका जा सकता है। ये कलाएं उनके परिष्कृत

जीवन का प्रतीक हैं। चिन्तन और दर्शन उनके बौद्धिक पक्ष की ओर संकेत करते हैं। स्थापत्य कला उनके भौतिक सुखों की ओर इंगित करती है। और साहित्य उनके सर्वांगीण जीवन का प्रतिबिम्ब है।

संस्कृति आधार है जिसकी नींव पर सभ्यताएं अपना आंचल पसारती हैं (प्रसारित करती हैं)। जहां संस्कृति आन्तरिक विकास को हवा देती है वहां सभ्यता उसका चोला है, वस्त्र है जो बाहरी विकास की ओर संकेत करते है। इसीलिए सभ्यताओं में अक्सर समय के साथ-साथ अनेक परिवर्तन आते रहते हैं। बाहरी विकास के अनेक स्वरूप और रंग अपना प्रभाव छोड़ जाते हैं जिन्हें प्रत्यक्ष तौर पर महसूस किया जा सकता है। दूसरी ओर चिन्तन का विकास इतना सहज सरल और धीमी गति से होता है कि सदियों तक भी उनमें परिवर्तन महसूस नहीं किया जा सकता। सभ्यताएं समय के साथ-साथ पीछे छूट जाती हैं। पर संस्कृति गुप्त गंगा की तरह बीच में बह कर भी जीवित रहती है। आज मोहन जोदाड़ो और हड़प्पा की सभ्यताएं गुम हो गई हैं — मृतप्राय: हैं पर वह संस्कृति आज भी अपने चिन्तन और धार्मिक आस्थाओं के माध्यम से हमारे जनमानस में जीवित है।

अक्सर किसी राष्ट्र अथवा जाति की संस्कृति एकान्त में पलती है। अंग्रेजी में हम इसे इन आइसोलेशन कह सकते हैं। एकान्त में पल कर ही यह परवान पाती है और उस जाति की अथवा राष्ट्र की विशेषताओं को अपने में समाहित कर उस राष्ट्र अथवा जाति की सोच का प्रतिनिधित्व करती है। यही कारण है कि यूनान, रोम, चीन, दजला और फरात, नील घाटी तथा वैदिक काल की संस्कृतियां अपने आप में अलग-अलग प्रकार की विशिष्टताओं से सम्पन्न रही हैं। अमेरीका के रेड इन्डियन लोगों की इन्का संस्कृति इन सब से अलग रही है। लेकिन बाद में यातायात के सुलभ साधन अपने प्रभुत्व की स्थापना हेतु चलाये गए राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अभियान, युद्ध, सत्ता और वैयक्तिक घुमक्कड़ प्रवृतियां इन संस्कृतियों के विकास में यथेष्ठ योगदान करती रहती हैं। उत्तरी भारत पर निरन्तर पाश्चात्य शक्तियों के आक्रमण तद्पश्चात उनके स्थापत्य राज्यों पर उनकी संस्कृति का यथेष्ठ प्रभाव भारतीय सस्कृति पर पड़ा। यूनान की स्थापत्य कला, शारीरिक सौष्ठव और शृंगार प्रियता भारतीयों के मन में धीरे-धीरे बैठ जाने लगी। यद्यपि यह प्रभाव अति सूक्ष्म था तथापि इसे आंका जा सकता है। अखनूर (जम्मू के पास) के ज़िले में पाई गई टेराकोटा की मूर्तियों में यूनानी केश सज्जा और शिरवस्त्र को देखा जा सकता है। बाद में आने वाली हूण, शक, मुंगोल आदि जातियां न केवल भारत में आकर रच बस गई अपितु जहां वे भारतीय सस्कृति से प्रभावित हुए बिना न रहीं वहीं पर उन्होंने भारतीय सस्कृति को भी अंशत: प्रभावित किया। परिणामत: कला के हर क्षेत्र में तथा चिन्तन में एक बार फिर विकास के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे जो अंग्रेज़ों, फ्रांसीसियों और पुर्तगालियों के भारत आगमन के साथ-साथ सम्पूर्णता को प्राप्त हुए। यह अब जो रूप भारतीय संस्कृति का हमारे सामने है वह संशलिष्ट संस्कृति के तौर पर जाना जाता है। इसी प्रकार भारतीय घुमक्कड़ों तथा बुद्धिजीवी वर्ग ने शेष संसार को भी अपनी संस्कृति के अंश दिए हैं। सम्राट अशोक प्रियदर्शी के काल में जो बुद्धमत का प्रचार प्रसार हुआ उसने चीन, जापान, जावा, सुमात्रा, मलयद्वीप, ब्रह्मदेश, हिन्दचीन, श्रीलंका तथा दूसरे अनेक देशों में जाकर उनकी संस्कृति को प्रभावित किया है — सोच के नए सोपान दिए हैं तो दूसरी ओर इसाई मिशनरियों ने

तीसरी दुनिया के अनेक बीहड़ स्थानों में पैठ पाकर जहां हजरत ईसा का संदेश दिया वहां उनकी आदिमानवीय संस्कृतियों को प्रभावित कर सभ्यता के दीप जलाये। अति पूर्वीय देशों में भारतीय स्थापत्य कला मन्दिर, बौद्धमठ, गुम्फा और तीसरी दुनिया के अनेक देशों में गिरजाघरों की स्थापना तथा नवीन आचार संहिताओं का व्यवहार में लाना इस बात का साक्षी है।

हर जाति अथवा राष्ट्र की संस्कृति के दो रूप मिलते हैं — एक अभिजात्य वर्ग की संस्कृति और दूसरी सामान्य जनता की। अनेक विद्वान शिक्षित कुछ लोगों की संस्कृति और जनसाधारण की संस्कृति के तौर पर इन दो रूपों को स्वीकारते हैं। मैथ्यू आर्नल्ड प्रथम रूप में किसी भी सभ्यता का सर्वोत्तम चिन्तन मानते हैं। दूसरी संस्कृति वह है जिसे बहुजन सोचते अनुभव करते और पसन्द करते हैं। (अमरीकी सभ्यता-मैक्स लर्नर पृ0-258)। हमारा बहुजन गांवों में बसता है। जो लोग कस्बों, उपनगरों व नगरों से होते हुए महानगरों में प्रवेश कर जाते हैं, वे अक्सर गांव के रीति रिवाज, अनुष्ठान, लोक व्यवहार, खान-पान, सोच, रिश्ते नातों का मेल, गंवई वातावरण आदि भूलकर नगरीय परिवेश में गुम हो जाते हैं। अक्सर उनकी वैचारिकता नगरीय परिवेश के साथ संघर्ष करती हुई अन्तत: शिथिल पड़ जाती है। कई बार बहुविध नगरीय वैचारिकता और कस्बाई सोच के मेल से नई वैचारिकता का सृजन भी संभव हो जाता है। साहित्य में गांव की ओर नामक आन्दोलन इसी बात का परिचायक है। चूंकि गांव की संस्कृति के विकास की सीमा बहुत निश्चित है, अत: नगरीय अथवा महानगरीय वैचारिकता के धरातल अनेक व्यवहार तथा सोच के लोगों की समन्वित धाराओं और मान्यताओं के कारण विकास के उच्च सोपान छूने लगते हैं। कुछ नया करने, सोचने और सृजन के नए धरातल खोजने की ललक में नित नए परिवर्तन होना स्वाभाविक है। महानगरीय संघर्षों के कारण जितना परिवर्तन पिछले कुछ दशकों में शीघ्रता के साथ संस्कृतियों में महसूस किया जा रहा है वह सहस्रों वर्षों के इतिहास में कभी नहीं ढूंढा जा सकता। अब तो लगता है इन महानगरों के माध्यम से कहीं कोई सामान्य मंच खोजा जा रहा है। यही संस्कृति अभिजात्य संस्कृति के तौर पर उभरती है। अक्सर ये लोग वे होते हैं जो सत्ता और राज्य के साथ बहुत करीब से जुड़े होते हैं। राज्याधिकारियों से और सत्ताधारियों के मनोरंजन हेतु नित नए अविष्कार कला और साहित्य के क्षेत्र में किए जाते हैं। कहीं कोई ऐसा मनचला कलाकार अथवा साहित्यकार भी अवश्य जन्म लेता है जो सत्ता के प्रभुत्व को स्वीकार न कर अपनी तुष्टि हेतु सामान्य अथवा प्रचलित कला या साहित्यिक आन्दोलन को दिशा देकर अथवा विद्रोह कर वैयक्तिक सत्ता को स्थापित करता है। शक्तिशाली होने पर वही आन्दोलन का पथ बन जाता है।

सामान्यत: जनसाधारण की संस्कृति को लोक संस्कृति के रूप में स्वीकार कर लिया गया है। अक्सर विद्वान इसी संस्कृति को वास्तविक और श्रेष्ठ मानते हैं। इसका आधार सरल सहज तथा कल्पना प्रसूत संवेदनशील वह मन है जिसमें संघर्ष की आग की आंच न के बराबर है।

यूरोप में इनलाइटमेन्ट के समय थके नगरों के ही लोक संस्कृति और लोक-मन को खोजा था । (अमेरिकी सभ्यता-मैक्स लर्नर पृ० 258) । अनेक बार नगरीय परिवेश से ऊबकर व्यक्ति गांव की ओर उन्मुख हो जाता है क्योंकि वहां सब कुछ प्राकृतिक है । व्यक्ति-व्यक्ति के साथ जुड़ा समुदाय रीति-रिवाज, रिश्ते-नाते, अनुष्ठान, रूढ़ियां, विश्वास कुछ भी बनावटी नहीं लगते । वे व्यक्ति को सहज ही अपना लेते हैं और वह उनमें घुल जाता है । यह सब प्रक्रिया धीरे-धीरे होती है हम पहचान नहीं पाते । यह सब इतना सहज और सरल है कि व्यक्ति कहीं पर भी अपने को अकेला नहीं पाता । लोकमानस.. सहज पर भी विश्वास करता है और अनुष्ठानिक जादू-टोने पर भी । इसी द्विमुखता से लोक अभिरूचि में अनन्तता के लक्षण उभरते हैं । लोक जीवन के तथ्यों में महासागर की भांति नाना प्रयोजन निहित रहते हैं । यही लोक प्रवृत्ति की मूल विशेषता है ।

लोक वार्ता का सतर्क लोक मानस है । वह विवेकपूर्वी है अर्थात तर्क अवस्था में पहले की स्थिति का है । जीवित और प्रेत में, स्वप्न और जागृत समृति में, अंश और समग्र में भावांश और मूर्त रूप में लोकमानस भेद नहीं करता । विवेक से लोकमानस का परिष्कार होता है । तब मनीषा जागृत होती है । वह मुनिमानस बनता है । लोक मानस और मुनिमानस के मध्य में जनमानस की अवस्था । (हरिचन्द पराशर-लोकदर्शन और लोकप्रकृति) — सोमसी-जनवरी 1979, अंक 1 पृष्ठ 1)

लोक संस्कृति में लोक का अभिप्राय लोकमानस से है जो सामूहिक रूप से समुदाय का प्रतीक है । लोक-विश्वास, लोक-परम्पराएं और लोक-जीवन से सम्बन्धित दूसरी प्रक्रियाओं को लोक संस्कृति के अन्तर्गत लिया जा सकता है । यह सत्य है कि साहित्य और कलाओं पर अभिजात्य संस्कृति का आधिपत्य रहता है पर कला और साहित्य को जो शक्ति जनसाधारण से प्राप्य है वह अभिजात्य वर्ग से नहीं । किसी एक वर्ग से कहीं समृद्ध और शक्तिशाली अपेक्षाएं जनता की होती हैं । इसीलिए कैंच बोअस ने कहा है कि 'मौलिक मानवीय समस्याओं पर मुझे जनता का निर्णय वर्ग के निर्णय से अधिक स्वीकार्य होता है । जनता की कामनांए वर्ग की कामनाओं से अधिक मानवीय होती हैं ।' (अमेरीकी सभ्यता-मेक्स लर्नर पृ. 258) किन्तु कभी कभी दोनों का निर्णय ग्रहणीय हो जाता है । विशेषकर उस समय जबकि जनता और वर्ग विशेष की अपेक्षाए एक ही क्षितिज को छूने लगती हैं । अमेरिका में लोक संस्कृति के समान्तर 'पापुलर कलचर' जिसे हिन्दी में लोकप्रिय संस्कृति के तौर पर अपना लिया गया है, जनसाधारण के साथ जुडी संस्कृति का वह रूप है जिसके माध्यम से अभिजात्य वर्ग की कला-सामग्री को जनसाधारण तक पहुंचा दिया गया है । यह केवल इसी संस्कृति की ही बात नहीं । यातायात के सुलभ साधनों के कारण हमारी लोक-परम्पराओं, लोक-कलाओं, और लोक-साहित्य की अनेक विधाओं में नगरीय परिवेश तथा अतिपरिवर्तनशील मान्यताओं का समावेश होनें ा है ।

अक्सर लोक गीतों एंव लोक कथाओं में उद्योगिक शब्दावली और वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रतीक व बिम्ब स्वतः ही प्रवेश कर गए हैं । दूसरी ओर लोकगीतों की स्वर लहरियां मुखौटे

और भाषा रचनात्मक इकाइयों और सृजन के नवीन सोपानों को छूने लगती हैं। लोकगीतों की लय, गति और संगीतात्मकता अभिजात्य वर्ग के साहित्य-सृजन में सहज ही पैठ पा जाती है। लोक नृत्यों की थाप और गति को नृत्यों में प्रयोग के तौर पर बान्धा जा रहा है। लोक-संस्कृति से अभिजात्य संस्कृति ने लय, छन्द, गति, वाणी, नाट्य, कथावस्तु, अभिनय, शब्दावली आदि को ग्रहण किया है। शिक्षा के प्रसार के साथ साथ मध्य-वर्गीय तथा निम्नमध्य-वर्गीय समाज की रुचि नये सांस्कृतिक अनुभवों को ग्रहण करने में हैं। ऐसे समाज में अभिजात्य और लोक संस्कृति का अंतर धुंधला पड़ता जाता हैं। गांव जो तीव्रता के साथ उपनगर अथवा कस्बे बनते जा रहे हैं, इस संकृति का प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। जहां एक साथ लोक और अभिजात्य कलाएं पलती हैं। यही वे धरातल हैं जहां एक नया क्षितिज उगता है जिसके आकाशी फैलाव का मटमैला रंग, धरती की सोंधी खुशबू और लालिमा से एकाकार होकर एक तीसरे धरातल को जन्म देता है। जिसमें दोनों की सुगन्धित रश्मियां हैं, दोनों के रंग हैं। जिसकी अपनी आकृति है, अपनी आभा है, अपना रंग हैं।

१८१–मस्तगढ़
जम्मू १००००१
(जम्मू और काश्मीर)

मेला बाड़ी धार

● शंकर लाल शर्मा

अर्की के पश्चिम में एक पर्वत श्रेणी का नाम बाड़ी धार है। इसके उत्तरी भाग में सरयांज गांव के ऊपर घना जंगल है जिसके मध्य शिव मन्दिर है। इस मन्दिर के प्रांगण में प्रतिवर्ष आषाढ़ की संक्रान्ति को मेला लगता है। यह मेला अर्की, बिलासपुर तथा नालागढ़ की सीमा पर होने के कारण बहुत लोकप्रिय है। वास्तव में यह मेला इस क्षेत्र का सबसे प्रमुख मेला है।

यह मेला महाभारत काल से जुड़ा है। पांडवों ने अपने अज्ञातवास का तेरहवां वर्ष इस वन प्रदेश में गुजारा था। पांडवों को इस प्रदेश का ज्ञान तभी से था जब वे लाक्षागृह जलने के बाद गुप्त सुरंग द्वारा करोल पर्वत पर सुरक्षित पहुंच गए थे। यह सुरंग पिंजौर से करोल तक बनाई गई थी। करोल कण्डाघाट के ऊपर सोलन क्षेत्र में स्थित है। पिंजौर तथा करोल में भी इसी दिन मेले लगते हैं। इसी काल में हिडिम्बा भीमसेन-प्रणय तथा हिडिम्ब वध का उल्लेख है।

इस क्षेत्र पर हिडिम्ब का अधिकार था। आज्ञातवास के समय में पांडव जिन स्थानों पर रहे आज वहां मन्दिर हैं और पांडवों की प्रतिमाएं स्थापित हैं। सुरक्षा की दृष्टि से ही इस स्थान का चयन पांडवों ने किया होगा। बाड़ी सबसे ऊंचा शिखर है। युधिष्ठर यहां मन्दिर क्षेत्र में रहते थे। पश्चिम दिशा में कोइल-सनोग गांव है। यहां अर्जुन का मन्दिर है। दक्षिण में दयोथल गांव में नकुल का मन्दिर है, पूर्व में अन्दरोली स्थान पर सहदेव का मन्दिर और उत्तर में साथ ही बुइला गांव में भीमसेन का स्थान है। अपनी सुरक्षा के लिए पांडव इन स्थलों पर दल-बल सहित रहते होंगे।

जनश्रुति के आधार पर ऐसी मान्यता है कि महाभारत के युद्ध के बाद आषाढ़ की सक्रान्ति को पांडव यहां भगवान शिव के मन्दिर में आए थे। इसीलिए यहां मेले का आयोजन होता है। सम्भवतः पांडवों ने कौरवों से युद्ध जीतने की मनौती की हो। जिसके पूरा होने पर वे यहां आए हों।

आषाढ़ संक्रान्ति की पूर्व संध्या से ही मेले का आयोजन शुरू हो जाता है। सभी देव स्थलों से पुजारी अपने दल के साथ मन्दिर प्रांगण में एकत्रित होते हैं। भोजन आदि से निवृत होकर वे रात्रि को लगभग नौ-दस बजे बाड़ी के लिए चल पड़ते हैं। जब सभी देव स्थलों के लोग बाड़ी

पहुंच जाते हैं तो मन्दिर के आस-पास पांचों पांडवों के पाई ते (स्थान निश्चित) पूजते हैं। हर स्थल पर मंगल ध्वनि वाद्य बजाए जाते हैं तथा उनकी अर्चना एवं आह्वान किया जाता है। यह उनकी आत्मा को अगली प्रात: मेले में उपस्थित होने का निमन्त्रण होता है।

पांडवों के साथ यहां एक बुढ़ादेई का पाई ता भी है। इसे भी पांडवों के साथ ही निमन्त्रित किया जाता है। बुढ़ादेई की पत्थर-प्रतिमा लगभग तीन फुट ऊंची है। यह प्रतिमा कला का सुन्दर नमूना है। उसका चेहरा टेढ़ा है। कहते हैं कि भीम ने किसी बात पर नाराज होकर उसके मुंह पर पूरे जोर से एक थप्पड़ मारा था। एक जनश्रुति के अनुसार बुढ़ादेई पांडवों की बहन थी। दूसरी धारणा के अनुसार यह सरादेवी, जिसके नाम पर सरयांज गांव बसा है, की प्रतिमा है। यह यहां के लोगों की कुल देवी थी। कुछ लोगों का मत है कि यह हिड़िम्बा की ही मूर्ति है। महाभारत में पांडवों की बहन का कहीं उल्लेख नहीं आता है। मूर्ति के नीचे भैंसे की आकृति लगती है जिससे इसका महिषासुर मर्दिनी होना अधिक संगत बैठता है. यहां कुछ वर्ष पहले तक भैंसे की बलि दी जाती थी अत: संभव है पांडवों के आगमन से पहले यहां के निवासियों की यह महाकाली कुलदेवी रही हो जिसे यह लोग पूजते आए हों। जो भी हो यह नारी मूर्ति देखने योग्य है। पांडवों तथा बुढ़ादेई को निमन्त्रित करने के पश्चात पुजारी लोग, दरबान गण तथा देव वाहनों को बुलाते हैं। उसके बाद भीमसेन के मंदिर बुइला का पुजारी बाड़ी और बुइला के बीच एक स्थान पर जिसे 'मरयारी की घाड़' कहते हैं, पहुंचकर एक मोड़ पर खड़ा हो जाता है। वहां से देओथल सामने दिखता है। पुजारी के पीछे अन्य लोग पंक्ति में खड़े हो जाते हैं। फिर ढोल, नगाड़ा आदि वाद्य-यन्त्रों को बजाते हैं। इस शोर के बीच पुजारी राक्षस हिडिम्ब और उसके परिजनों को मेले में आने का निमन्त्रण देता है। उसकी आवाज किसी को भी सुनाई नहीं देनी चाहिए। ऐसी धारणा है कि यदि यह आवाज कोई सुन लेता है तो उसका अनिष्ट निश्चित है।

इस गहरे ढंकार में भीमसेन ने यहां के तत्कालीन शासक हिडिम्ब का वध करने के बाद उसे परिजनों सहित फेंक दिया था। मरने से पहले हिडिम्ब ने महाराजा युधिष्ठर से कहा था कि मेरा कुल समाप्त हो रहा है। यह विडम्बना है कि मेरे राजकुल के समाप्त होने से पीछे कोई नाम लेने वाला तथा शेष संस्कार करने और पानी तक देने वाला नहीं रहेगा। युधिष्ठर ने उसे आश्वासन दिया था कि ज्येष्ठ मास के अन्तिम पन्द्रह दिनों में इस धार पर बसने वाले लोग जो भी शुभ-धार्मिक कर्म करेंगे उसका पुण्य फल तुझे मिलेगा। यह बात यहां के लोग आज भी मानते हैं। फलस्वरूप इन दिनों कोई भी धार्मिक कार्य नहीं किया जाता। परन्तु मेले में उन्हें उचित सम्मान के साथ याद किया जाता है तथा निमन्त्रित किया जाता है। हिडिम्ब के बाद यहां का शासन घटोत्कच ने सम्भाला था। घटोत्कच के नाम पर ही यहां एक गांव घड़ियाच है।

हिडिम्ब तथा उसके परिजनों को आमन्त्रित करने के पश्चात पुजारी लोग फिर बाड़ी देव स्थल पर लौटते हैं। शेष तीन पाई ते बजाने के बाद मंदिर प्रांगण में भगवान शिव को चढ़ावा देने

के लिए अंगारों पर रोट (बड़ी रोटी) पकाते हैं। उसे प्रसाद रूप में ग्रहण करने के बाद सभी अपने-अपने देव स्थलों को लौट जाते हैं।

पांडवों के सभी मंदिरों में पुजारी जागरू (सेवक) तथा मंगलामुखी (वाद्य वादक) पीढ़ी दर पीढ़ी काम करते आ रहे हैं इन लोगों को मंदिरों में प्राप्त चढ़ावे का अंश प्राप्त होता हैं। वाद्य यन्त्र मंदिरों की संपत्ति होते हैं। इनके बजाने को बेल कहते हैं। बेल एक अनूठी देव धुन है जिसे केवल वादक ही जानते हैं। वाद्य यन्त्रों में ढोल, नगाड़ा, टाहुकली, पाहणा, रणसिंगा, शंख घंटियां तथा छैणे हैं। यहां करनाल और शहनाई नहीं बजाई जाती। इसका कारण है कि यह बाजा युद्ध के मैदान से जुड़ा है। इसकी धुन मन की धड़कनों को तेज कर देती है। कमजोर दिल वाले लोगों खासकर महिलाओं पर इसका प्रभाव पड़ता। इससे प्रभावित कई महिलाओं के मेले वाले दिन अचेतन तथा अर्धचेतन अवस्था में अजीब हरकतें करते देखा जा सकता है। बुजुर्ग इस स्थिति को दैहिक-मानसिक मलीनता अथवा देवता के प्रति की गई अशिष्टता का प्रभाव-फल बताते हैं।

आषाढ़ संक्रान्ति को सवेरे ही पुजारी, जागरू व मंगलामुखी देवरथ यात्रा की तैयारी करते हैं। इस यात्रा में सभी भाग लेने के लिए उत्सुक रहते हैं। इस यात्रा को पूज कहते हैं। पूज देवरथ या सुखपाल पर चौकोर आसन पर अष्ठधातु के मेहरे (प्रतिमा) रखे होते हैं। ऊपर छत्र लगा होता है। देव रथ को चलते हुए दो व्यक्ति उठाते हैं तथा नाचते समय चार। अपने-अपने देवरथ को सजाने की बड़ी होड़ लगी रहती है।

लगभग आठ बजे प्रातः जेठी पूज कोइल सनोण से यात्रा शुरु करती है। दुबली की पुखर पर पहुंचने पर देयोथल के तुरी उनके बाजे की धुन को पकड़ेंगे। अब कोइल सनोन की पूज के लोग आराम करते हैं तथा देयोथल की पूज यात्रा शुरु कर देती है। जब यह पूज मरयारी की घाड़ पर पहुंचती है तो बुइला की पूज उनकी बाजाधुन पकड़कर यात्रा शुरु कर देती है। यह सारी क्रिया बड़े व्यवस्थित एवं सहज ढंग से होती है। इसमें कहीं भी अन्तर नहीं आता।

चौथी पूज जो अन्दरोली से आती थी, अब नहीं आती। कई वर्ष पहले वहां चोरी हुई थी और मंदिर से काफी चीजें चली गई। उसके बाद वहां से एक पुजारी मेहरा और पानी का लोटा लेकर पूर्वसन्ध्या को ही बाड़ी मन्दिर में पहुंच जाता है।

बाड़ी का अर्थ बड़ा अथवा घर होता है। यहां मन्दिर के चारों ओर पत्थरों की एक दीवार है। मेला इसी के भीतर लगता है। दीवार के अन्दर काफी बड़ा क्षेत्र है। सबसे पहले जेठी पूज मुख्य प्रवेश द्वार से प्रविष्ट होगी। द्वार लांघते ही देवरथ का नृत्य शुरु हो जाता है। फाटक से मन्दिर प्रांगण तक पहुंचने के लिए इसे 25-30 मिनट का समय लग जाता हैं। आधे घंटे के बाद देओथल की पूज द्वार लांघ कर नृत्य शुरु करती है। और उसके आधे घण्टे के उपरान्त बुईला की पूज।

जब तक सभी पूजें मन्दिर प्रांगण में नहीं पहुंच जाती, नाच चलता रहता है। बाड़ी मन्दिर में तीन दरवाजे हैं। प्रत्येक पूज को एक द्वार से प्रवेश करा कर अन्दर मन्दिर में स्थापित किया जाता है। इस बीच छत्र, चढ़ावा आदि चलता रहता है। सायंकाल सभी देवरथ अपने-अपने स्थानों को प्रस्थान करते हैं। लौटते समय बेल नहीं बजाई जाती। इस मन्दिर क्षेत्र में कोई नहीं रहता केवल भादों मास में एक माह भर सांध्यदीप जलाने और बेल बजाने सरयांज से एक व्यक्ति नियत रहता है।

यहां सड़क व पानी का न होना खटकता है। यह स्थान पर्यटन केन्द्र के रूप में विकसित हो सकता है। इस मेले में खड विकास, कृषि विभाग, उद्योग तथा अन्य सरकारी विभागों द्वारा प्रदर्शनियोंका आयोजन कर लोगों को आधुनिकतम जानकारी प्रदान की जा सकती है।

राजकीय माध्यमिक पाठशाला बखालग,
तहसील अर्की, जिला सोलन १७३ २०८ (हि० प्र०)

लोक नाट्य

आउटर सराज का निरसू

● डॉ० बलदेव ठाकुर

कुल्लुई लोक नाट्यों और लोकानुरंजन खेलों में निरमंड-वादी के निरसू मुख्य हैं । जिस प्रकार हमारे देश के मैदानी भागों में रबी की फसल तैयार होने पर वैसाखी का पर्व मनाया जाता है ठीक उसी खुशी और हर्ष-उल्लास में इस घाटी के लोग रबी की फसल की तैयारी पर बैसाख महीने में नीरसू मनाते हैं । इस मशहूर लोक-नाट्य खेल को खेलने के लिए किसी विशेष मंच इत्यादि की आवश्यकता नहीं होती । गांव का कोई खुला स्थान ही लोक-नाटककारों को अपनी कला प्रस्तुत करने के लिए काफी होता है । निरसू निरमण्ड क्षेत्र के लगभग हर गांव में मनाया जाता है । हर गांव में नहीं तो हर फाटी में एक-दो गांव तो अवश्य ही इस खेल को रचाते हैं ।

निरसू की तरह ही कुल्लू के कुछ इलाकों में मार्गशीर्ष महीने में खरीफ की फसल तैयार होने पर हरन के खेल खेले जाते हैं। हरन भी निरसू की तरह ही लोक-नाट्यों का एक सामूहिक प्रदर्शन है । हरन भी निरसू की तरह गांव-गांव में रचाई जाती है। हरन में एक गांव के खिलाड़ी अपना खेल दिखाने गांव-गांव जाते हैं परन्तु निरसू एक गांव में वहीं के वासी स्वय मनाते हैं । एक गांव के कलाकार दूसरे गांव के निरसू में अपनी कला प्रस्तुत नहीं कर सकते।

निरसू इस सारे इलाके में थोड़े-बहुत स्थानीय अन्तर के इलावा करीब एक से रूप मे मनाया जाता है। पहले-पहल तो इसके लिए कोई विशेष चुने हुऐ अभिनेता नहीं होते थे तथा कोई भी आदमी अपनी इच्छानुसार बीच में प्रकट होकर स्वांग रचा सकता था। परन्तु आजकल मुख्य मेला तो गांव के ही लोग संयोजित करते हैं पर निरसू के स्वांग कुछ प्रमुख लोग ही करते हैं जो कि सवर्ण जाति से सम्बन्ध रखते हैं । इन प्रमुख कलाकारों को, गांव के लोग सेवा-भाव और महमानवाजी में फीस इत्यादि देते हैं जोकि कभी भी पहले से तय नहीं की होती है । इन कलाकारों के साथ वाद्य-संगीत मन्दिर का होता है । बाजगी ज्यादातर अपना देवता भी अपने साथ लाते हैं। इन लोगों को भी बाद में अनाज आदि देकर सम्मानित किया जाता है ।

दिन में सामान्य देवता-मेला लगता है। उसमें नाटी का प्रमुख स्थान होता है । सायंकाल के भोजन के पश्चात् लोग गांव के किसी खुले मैदान में एकत्रित हो जाते हैं । सब लोग बीच में एक खाली जगह पर बैठ जाते हैं और कलाकारों के आने-जाने के लिए थोड़ा सा रास्ता भी छोड़

देते हैं। जिन दिनों गांवों में बिजली नहीं पहुंची थी उन दिनों मैदान के चारों कोनों पर लम्बे लकड़ी के डण्डे पर बोरी इत्यादि बांधकर मिट्टी का तेल छिड़काकर उसमें आग लगाई जाती थी और इस प्रकार इन मशालों से रोशनी का इन्तजाम किया जाता था। पर आजकल तो करीब हर गांव में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध कर दिया जाता है।

निरसू में संगीत, नृत्य और अभिनय तीनों की एक सामूहिक झलक देखने को मिलती है। एक स्वांग के बाद दूसरा स्वांग आने के बीच जो समय होता है उसमें आम जनता वाद्यवृन्द के साथ नृत्य करती है। इस समय गीत भी नृत्य का मुख्य अंग होता है। ऐसे मध्यांतरों के दौरान बाजगी जनता के नृत्य गीतों के अनुसार ज्यादातर धौंउंसी, ढांकुडी या ढेंकुली इत्यादी से संगीत देते हैं। स्थानीय लोग इसको **मिन्ह बाजा** अर्थात पतला बाजा बोलते हैं। यह मिन्ह बाजा जिन वाद्यों में बजाया जाता है उनको सामूहिक रूप में **छाबा** का नाम दिया गया है अर्थात ऐसे वाद्य जो सब एक ही छाबड़े (टोकरी) में रखे जाते हों। एक छाबे में दो ढेंकुलियां, दो बांसुरियां, एक छाह्ड़ी (कांसे की थाली जिसे बजाया जाता है) और एक धोंउंसी होती है।

धौंउंसी आम ढोल से छोटा होता है और आकार में चपटा होता है। इसे ढोल की तरह ही दो पतली लकड़ियों से दोनों तरफ से बजाया जाता है। ढांकुडी आम ढोल की तरह ही आकार में गोल होता है परन्तु काफी छोटा होता। इसे भी धौंउंसी की तरह दो लकड़ियों से दोनों तरफ से बजाया जाता है। ढेंकुली डमरू के आकार का वाद्य है। दोनों तरफ के चमड़े के पटों (तलों) के बीच धागे होते हैं। उन धागों में खिचाव पड़ने से दोनों पट ज्यादा सख्त होकर तेज पतली आवाज प्रस्तुत करते है और धागों में ढील देकर दोनों तल ढीले पड़ जाते हैं तथा मोटी भद्दी आवाज से बजते हैं। ढेंकुली की बीच की पतली कमर के हिस्से को बाएं हाथ के अंगूठे और दिशा अंगुली के बीच में फंसा दिया जाता है और उससे धागों पर नियन्त्रण रखा जाता है तथा दाएं हाथ में एक लकड़ी से इसका तल बजाया जाता है।

इस मधुर मिन्ह बाजे के साथ जो विशेष गाने गाए जाते हैं उन्हें **छाड़ी** कहते हैं। ऐसी ही एक छाड़ी के कुछ अंश इस प्रकार है :

सौरगे बोली इन्द्र देऊ राजा। सौरगे बोली इन्द्र देऊ राजा॥
पाताले बासुगी नागा। कांसे राजे लाई कुआदा॥
बांडी गोऊ-ओ लेआ कराओ। उलटी देआ सुलटी लेआ॥

अर्थात् स्वर्ग लोक में इन्द्र का राज है, पाताल में बासुकी नाग का राज है और इस लोक में कंस ने उत्पात मचा रखा है। बांड गाय (दूध न देने वाली गाय) पर भी उसने कर लगाया है और उसके राज में सच-झूठ का इन्साफ खत्म है। इस प्रकार के भिन्न-भिन्न छाड़ी गीत और साथ में नृत्य बीच-बीच में प्रस्तुत किए जाते हैं। कभी-कभी मध्यांतरों में ढोल नगारों के साथ नाटी भी लगाई जाती है।

रात्रि के कार्यक्रम शुरू करने में सबसे पहले फकीरी मंगलाचरण गाते हैं। इसमें वे लोग रात्रि के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए देवता की वन्दना करते हैं। इस दौरान देवता का रथ

भी अपना प्रमुख नृत्य प्रस्तुत करता है। इस मंगलाचरण में कुछ ऐसा प्रतीत होता है जैसा कि लोग देवता से उस रात होने वाले स्वांगों के लिए क्षमा मांग रहे हों क्योंकि इन स्वांगों में कभी-देवता और उसके गूर पर भी मजाक किए जाते हैं। इतना सब कुछ होने के बाद देवता का रथ एक तरफ विराजमान हो जाता है। तब शुरू होती है स्वांगों की लड़ी।

निरसू मे कई प्रकार के स्वांग रचाए जाते हैं परन्तु इन सबको देखकर निचोड़ इस प्रकार है कि मुख्यतया ये पांच प्रकार के विषयों से सम्बन्धित होते : ऐतिहासिक, धार्मिक, पौराणिक, साधु बैरागियों सम्बन्धी व सामाजिक (दैनिक जीवन सम्बन्धी)।

पहला स्वांग **डोल बरैंकी** का होता है। यह एक असाधारण रूप से लम्बे कद की स्त्री होती है। एक लम्बी लकड़ी पर स्त्री-वस्त्र पहना कर इस डोल बरैंकी को संगीत के साथ नचाया जाता है। यह स्वांग स्वयं कुछ नही बोलता। पर स्वांग उठाने वाले और फकीरी अपने वाद्य-संगीत के साथ इससे सम्बंधित आख्यान गाते हैं। स्वांगों में कोई प्रमुख, विशेष वस्त्रादि नहीं पहने जाते। मुंह पर या तो मुखौटे पहने जाते हैं या फिर वस्त्र फाड़ कर चेहरे पर बांध, रूप बदल कर गुजारा चलाया जाता है। डोल बरैंकी के बाद राजा ध्रुवदेव, मुगलों का भारत में आगमन, भारत में अंग्रेजों के राज इत्यादि से संबधित ऐतिहासिक स्वांग, रामायण और महाभारत के अंशों पर आधारित पौराणिक स्वांग, मंदिर, ठाकुरों की पूजा और गूर से पचेऊड़ मांगने जैसे धार्मिक स्वांग, हरिद्वार के साधू-संत और बीरीभट्ट जैसे सन्यासियों के स्वांग और फिर दैनिक जीवन में विवाह-शादी, हल चलाना, चक्की पीसना, साहुकारी प्रथा, और आजकल की राजनीति की कुछ अभिन्न कुरीतियों पर कई प्रकार के सामाजिक स्वांग एक के बाद एक करके रचाए जाते हैं।

इन स्वांगों में कई बार दर्शकों में बैठे किसी विशेष आदमी पर भी स्वांग पटक दिया जाता है। जैसा कि पुजारली निरसू में लेखक के सामने आजकल की नसबन्दी आप्रेशनों पर कलाकारों द्वारा शानदार स्वांग रचा दिया गया। और तो और स्वांगों के दौरान गूर से पचेउड़ मांगने पर गूर के उत्तर में भी स्वंग की झलक दीखती है। जैसे कि लोग यदि वर्षा के लिए देवता से आग्रह करते हैं तो देवता की तरफ से गुर का जवाब मजाक में यह होगा कि इस साल जितना सूखा ज्यादा पड़ेगा उतनी ही अगले साल आप लोगों को वर्षा मिलेगी। अर्थात लोगों को तो इस साल वर्षा की आवश्यकता है पर देवता उन्हें अगले साल की बरसात के लिए इस साल सूखे का वरदान दे रहा है।

इस प्रकार इन लोक-नाट्यों में भूत और वर्तमान के जनजीवन का एक जीता-जागता प्रस्तुतिकरण है। समाज के दूषित पहलुओं पर तथा गांव के किसी मुख्य व्यक्ति के बुरे स्वभाव पर भी कभी ऐसा तीखा प्रहार लिया जाता है कि कभी-कभी उस व्यक्ति के व्यवहार में सुधार भी आ जाता है। समाज की वर्तमान कुरीतियों पर जो स्वांग प्रस्तुत किए जाते हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि इन लोगों में न जाने किस युग से, दहेज-प्रजा, लड़कियों को न पढ़ाना, चोरी-डाका, साहूकारी इत्यादि दूषित प्रथाओं से लड़ने की लालसा रही है और कैसे इन कुरीतियों को आहिस्ता-आहिस्ता समाप्त कर पा रहे हैं।

सारी रात स्वांगों और छाड़ी गीतों और नृत्य का क्रम चलता रहता है। सुबह के समय देवता का कार्टून भी गड़कू देऊ के रूप में निकाला जाता है। अंतिम झलकी के रूप में सुबह नौताड़ का स्वांग निकाला जाता है। इसमें भी नौ फुट लम्बे असाधारण आदमी का स्वांग नचाया जाता है। सुबह के समय दशी गाई जाती है। दशी के ये टप्पे बैशाख में नई ऋतु शुरु होने का प्रतीक हैं।

एशकी बोर्षे कुपू-चेलू न बाशो।
कि मारो लूणिये कि देशा न नाशो॥

अर्थात् इस साल नई चिड़िया नहीं बोली — क्या बात है? या तो नमक लाने वालों ने उसे मार दिया है या वह नाराज होकर हमारे देश से भाग गई है। बैशाख का महीना वही समय होता है जब यह नई चिड़ियां कुपू बदलते मौसम के अनुसार इस पहाड़ी इलाके में आती है और अपनी मधुर ध्वनि से लोगो को मोह लेती है। इसकी आवाज सुनना लोग बड़ा शुभ मानते हैं।

जौ लोउए कोछड़ीए, गेहूं रातीए कीशे।
पाणी दे दशीए, हामे छमाहिए चीषे॥

अर्थात् जौ काट दिए हैं और कणक की बालियों में लाल रंग आ गया है। हे भगवन्! पानी दे दो, हम छह महीने से प्यासे हैं। दशी के इन टप्पों और नौताड़ के नृत्य के पश्चात् निरसू की यह शाम सुबह में बदल जाती है और लोग एक बार फिर से अपने खेतों के काम में व्यस्त हो जाते हैं।

अरसू, जिला कुल्लू
(हिमाचल प्रदेश)

चिन्तपुरणी : एक अध्ययन

● देवी दास शर्म्मा

हमारा देश मन्दिर-संस्कृति परम्परा में अभूतपूर्व देश है । दक्षिण-भारत के मन्दिर स्थापत्य-कला की अद्भुत कलाकृति के केन्द्र रहे हैं । ईश्वर-चिन्तन, साकारोपासना भारतीय-संस्कृति के आदर्श थे। यह ऋषि-संस्कृति जो प्रकृति की गोद में पली थी, देवी तथा देवताओं के रूप में उद्भूत हुई । सरस्वती देवी की आर्षजनों पर अपार कृपा थी। अत: कहा जा सकता है कि इसी आधार पर देव तथा दानत्व रूप में भगवती दुर्गा ने महिषासुर संहार किया हो। हमारे यहां सब मातायें ऐतिहासिक रूप में प्रसिद्ध तो हैं ही, परन्तु भारतीयों की कामनाओं की पूर्ति के कारण ये पूज्य भी हैं। ऐसा कौन भारतीय हैं जो दुर्गा, महांकाली, ज्वाला जी, चिन्तपुरणी, नैना देवी, वैष्णों देवी, कांगड़े वाली. इन नामों से अवगत नहीं है। आस्था और श्रद्धा के साथ मातृभक्त-जन माताओं के मन्दिरों में जाकर श्रद्धा के फूल चढ़ाते हैं और अपनी इच्छाओं की पूर्ति का संसार सृजन करते हैं। अत: मातृ-शक्ति इस धर्म-प्रधान देश में कितनी स्तुत्य, वन्दनीय रही है। इन्हीं माताओं में से अध्ययनात्मिक रूप में चिन्तपुरणी इस लेख का विषय है।

माता चिन्तपुरणी की शोभा यात्रा के लिये होशियारपुर से सड़क जाती है और आगे भरवाईं में मोटरों का अड्डा है मेले के दिनों यहां बड़ी भीड़ होती है । अधिक श्रद्धालु मंगल-वाद्य बजाते हुए माता के दरबार में पहुंचते हैं। भरवाईं से मातृ-मन्दिर केवल दो मील की दूरी पर है। पैदल यात्री मांगने वालों को पैसे देते जाते हैं। निर्धनता की बलिवेदी पर चढ़ी पहाड़ी कन्यायें कहती हैं—सस्ता पैसा दे जा। उन के चेहरों पर गरीबी के करुणा भरे बादल प्रतिक्षण मंडराये रहते हैं। केवल पहाड़ों पर बसने वाली चिन्तपुरणी मां अपनी पुत्रियों की आकांक्षायें पूरित करती है।

मां की सुन्दर मूर्ति मन्दिर के भीतर है। वहां पुजारी बैठे हैं। प्रवेश-द्वार पर एक बड़ा घण्टा है। प्रत्येक भक्त-जन उसे बजा बजा कर माता के चरणों में अष्टांग प्रणाम करता है और प्रसाद लेकर माता का आशीर्वाद प्राप्त करता है। नवरात्रों में तथा सावन अष्टमी को अन्तर्प्रान्तीय भक्त जन आते हैं। कन्याओं को हलवा आदि भोजन कराते हैं। कामना-पूरित-जन बड़ी-बड़ी उम्मीदें लेकर स्वगृहों को वापिस होते हैं। मां की विविध प्रकार की मूर्तियां तथा रक्त-वर्णीय झण्डे हाथों में लेकर भेंट के रूप में चढ़ाते है।

उस युग में अत्याचारियों के अत्यचार आज ही की तरह हो रहे थे। गौ माता का आदर तो क्या—उस का गला काटा जा रहा था। कन्याओं का स्थान-स्थान पर निरादर था। ऐसे भयंकर समय में उद्धार हेतु अत्याचारों को मिटाने के लिये लोगों की दु खद पीड़ाओं को खत्म करने के लिये, निर्भय करने हेतु और उन की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिये देवी चिन्तपुरणी का इस गिरिमाला में अभ्युदय हुआ था, जो आज तक अपने सेवकों के कष्ट निवारण के भार को धारण किये हुए है।

ऐसी स्थिति को देखकर ही मां के एक भक्त प० माईदास के हृदय में उद्धार की जगमगाती ज्योति जल उठी थी। उस ने मां से प्रार्थना की थी कि सर्व संसार की चिंता दूर करने वाली माता चिन्तपुरणी मेरे मन में केवल देश भक्ति, गौ और गरीब की रक्षा करने की जो उत्कट इच्छा है, जिस से संसार पापों से बचे और धर्म का प्रकाश हो और ससार जिस से सुख तथा शान्ति की सांस ले सके, ऐसी भावना मेरे मन-मन्दिर में भर दो। भक्त की पुकार सुनते ही मां ने स्वप्न में उस माईदास साधक को दर्शन दिये तथा कहा कि तुम मेरे अनन्य भक्त हो। किसी प्रकार की आप को चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं अत्याचार और अत्याचारियों का समूल नाश करूंगी। सारा पाप एकदम छिन्न-भिन्न हो जायेगा। सभी लोग सुख और शान्ति का पीयूष पी सकेंगे। इस स्थान पर सती के चरण अंश गिरे थे। मैं इस स्थान पर चिन्तपुरणी के रूप में प्रकट हो कर समस्त विश्व को चिंता-मुक्त करुगी। तुम्हें चाहिए कि तुम मेरा एक मन्दिर बना दो और तुम्हारे समस्त कार्य भगवती की कृपा से सफल हो जायेंगे।

फिर क्या था ? माता के श्रद्धालु भक्त माईदास ने माता का एक छोटा-सा मन्दिर बनवा दिया। माता की शक्ति का गौरव दूर-दूर तक फैल गया, भक्त जन दूर-दूर से दर्शनों के लिए आने लगे। भक्त जनों ने आपसी सहयोग से मन्दिर की रचना की। एक भक्त शब्बू नाम वाले ने अपनी जीह्वा माता जी के चरणों पर चढ़ाई और माता की शक्ति से वह जीह्वा फिर पूर्ववत् लग गई। इस प्रकार माता की शक्ति का विकास सभी जगह फैल गया।

मां! आज भी इस देश में वही स्थिति है। सभी हिंसक बन गये हैं। सत्य से किसी को भी प्यार नहीं है। धार्मिक-स्थल वासना-पूर्ति, रक्तपात, लूट के केन्द्र बनते जा रहे हैं। कोई किसी की नहीं सुनता। एक दौड़ में सभी फंस गये। कोई पीछे की ओर नहीं देखता भले ही तेरा कोई भक्त ही हो। ऐसे लोगों का तू ही उद्धार कर सकती है। तेरी कन्याओं की पुकार भी कोई नहीं सुनता। कोई स्वयं जल रही है और कोई किसी नर-पिशाच द्वारा जलाई जा रही है। गाय के दूध पर ही भारत बुद्धि के क्षेत्र में विश्व गौरव प्राप्त किए हुए था तथा विश्व का गुरु था और आज मां वह तेरा गो-धन विनाश के कगार पर खड़ा है जिसके लिए महाराजा दिलीप ने अपने प्राणों की आहुति भी देने की प्रतिज्ञा कर ली थी। आज तेरे माईदास जैसे भक्त तेरी ओर मां आंखें लगाये बैठे हैं और आशा है मां, कि तू अपने भक्तों की रक्षा जरूर करेगी और संसार तेरी दया और कृपा से अंधेरे से निकलकर तेरी परम-पवित्र-ज्योति की ओर बड़े प्रेम से अग्रसर होगा।

द्वारा जिला भाषा अधिकारी,
हमीरपुर (हि०प्र०)

एक परिचय

लोकगीत मोहणा के कथानायन मोहन

डॉ० लेखराम शर्मा

सामाजिक रिश्तों में सहोदर भ्राता का अद्वितीय स्थान है। बाल्मीकीय रामायण में लक्ष्मण मूर्च्छा से चिन्तित राम कहते है :

देशे देशे कलत्राणि देशे-देशे च बान्धवा:
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदर:

भावार्थ यह है कि पत्नी आदि के रिश्ते तो सब जगह मिल जाते हैं किन्तु ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां सगा भाई मिल सके। इसी भाव को रामचरितमानस में इस प्रकार दर्शाया गया है :

सुत वित नारि भवन परिवारा, होहिं जाहिं जग बारहिं बारा,
अस विचारि जियं जागहु ताता, मिलइ न जगत सहोदर भ्राता।

मूर्च्छित लक्ष्मण को लक्ष्य बनाकर राम कहते हैं कि पुत्र, धन, स्त्री, भवन और परिवार तो संसार में बार-बार होते और जाते रहते हैं पर संसार में सगा भाई नहीं मिलता है। ऐसा मन में विचार कर के हे लक्ष्मण! होश में आ जाओ और उठ जाओ। मोहन का जीवनवृत भी सहोदर भ्राता से सम्बन्धित है। इस गतिशील संसार में न जाने कितनी ही घटनाएं हुई हैं और आगे भी होंगी। असंख्य घटनाएं काल प्रवाह में बह गई हैं। केवल वहीं घटनाएं स्थिर व प्रचलित हैं जिन्हें किसी कवि ने शब्दबद्ध कर दिया है। आखिर राम-रावण युद्ध और कुरुक्षेत्र के मैदान की लड़ाई की चिरन्तनता भी तो कवियों के सत्प्रयत्नों का ही परिणाम है। बिलासपुरी लोककवि के निम्न शब्द यदा-कदा आकाशवाणी या पुरानी पीढ़ी के लोगों से सुनने को मिलते हैं।

तू नी दिसदा ओ मोहणा तू नी दिसदा, मेरा पला-पला लोहुए रा रोज सुकदा।
आया मरना ओ मोहणा आया मरना, भाईये री कित्तियें आया मरना।

इन पंक्तियों के श्रवण गोचर होते ही अनायास कुछ प्रश्न मस्तिष्क में कौंध जाते हैं, यथा— मोहन कौन था ? वह दिखाई क्यों नहीं देता है ? इत्यादि। प्रस्तुत लेख में भ्रातृप्रेम में हुतात्मा मोहन की जीवनी प्रामणिक तथ्यों के आधार पर प्रस्तुत की जा रही है।

जिला बिलासपुर की तहसील घुमारवीं के रण्डोह नामक ग्राम में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हमारे कथानायक मोहन का राजपूत घराने में जन्म हुआ। मोहन, तुलसीराम और लच्छमण तीन भाई थे। इनमें से तुलसी राजा विजयचन्द के यहां मुसाहिब था। भारी जमींदारी और राजसेवा के परिणामस्वरूप तुलसी का अहंभाव चरम सीमा पर था। गांव में उसका पूर्ण प्रभुत्व था। क्या मज़ाल कि कोई उसके सामने टिक सके। गांव के दूसरे छोर का मसद्दी सिंह नामक व्यक्ति सेना के हवालदार पद की पेन्शन ले रहा था। वह तुलसी के एकाधिकार में रोड़ा था क्योंकि वह भी उसी स्तर का व्यक्ति था। तुलसी की जमीन मसद्दी के घर के पास थी तथा मसद्दी की जगह व मवेशीखाना तुलसी के घर के पास। दोनों में काफी दूरी थी अतः तुलसी मसद्दी को बार-बार जगह के तबादले के लिए कहता था। अन्ततः उसे लगा कि हवालदार के रहते यह तबादला नहीं हो सकेगा। कुछ अन्य आन्तरिक कारणों तथा तबादले के उद्देश्य से तुलसी ने मसद्दी को अपने रास्ते से हटाना चाहा। उसे पूर्ण विश्वास था कि हत्या का उस पर शक तक नहीं गुजरेगा। उसे स्वयं पर पूरा यकीन था।

आज से लगभग 62 वर्ष पूर्व माघ, सम्वत् 1979 (जनवरी, 1923) की बात है। मसद्दी की पत्नी ने प्रसूता होना था। उसे कहा गया कि वह पशुओं को मवेशी खाने में रात के लिए घास आदि डालकर जल्दी ही लौट आए क्योंकि उसने आकर दाई का प्रबन्ध करने के लिए भी जाना है। घर के बाकी सदस्य उसकी गर्भवती पत्नी की देखभाल के लिए घर पर ही रहे तथा हवालदार अकेला ही घास डालने के लिए गया। देर रात गए तक मसद्दी वापिस नहीं लौटा, वर्षा पूरे जोर से हो रही थी। घर वालों ने समझा कि वह मवेशीखाने से सीधा ही दाई लाने के लिए चला गया है। रात को उसके घर पुत्र भी पैदा हो गया किन्तु वह सुबह तक नहीं लौटा। तीन दिन तक उसका कोई पता नहीं चला। उसके बाद गांव के बाहर एक सुनसान जगह लोगों ने गीद्ध और कौवों का प्रकोप देखा तो उन्होंने जिज्ञासावश पशुओं की खाल उतरने वाले लोगों से पूछा कि यहां उन्होंने किसी पशु की खाल तो नहीं उतारी। उनके इन्कार करने पर जब लोगों ने जाकर देखा तो एक क्षत-विक्षत अस्थिपिंजर पड़ा हुआ था। शव को पक्षियों द्वारा इस तरह नोचा जा चुका था कि उसकी पहचान नहीं हो पा रही थी।

हवालदार के गुम होने की खबर भी फैल चुकी थी, संयोगवश नोचने से एक बाजू का वह भाग बचा हुआ था जिस पर नाम खुदा हुआ था। बाजू पर मसद्दी का नाम देखकर हवालदार के कत्ल की पुष्टि हो गई। शव को उठा कर रियासत की राजधानी बिलासपुर ले जाया गया। वहां से थानेदार पोहलोराम के नेतृत्व में गई पुलिस पार्टी ने मसद्दी को बाघ द्वारा खा जाने का मत स्थापित किया। राजा की इससे सन्तुष्टि नहीं हुई तथा उस थानेदार को निलम्बित करके दयन्त खान नामक पुलिस अधिकारी तथा सलनू गांव के सिपाही सुखराम को वहां भेजा।

रण्डोह में यह पुलिस सतरह दिनों तक छानबीन करती रही। गांव के सभी निवासी जांच में शामिल कर लिए गए। कई प्रकार की सजाओं के बाद भी रहस्य अनावृत्त नहीं हुआ।

अठाहवें दिन लम्बरदारनी पार्वती ने आखिर भेद उगल ही दिया कि यह काम तुलसी का है और सहयोग उसके भाई लच्छमण हाजरी का है। छानबीन से यह तथ्य सामने आया कि घटना वाले दिन वर्षा के कारण सभी आदमी अपने-अपने घरों में थे, मसद्दी का मवेशी खाने में सूर्यास्त के समय आना सुनिश्चित जानकर तुलसी कुल्हाड़ा लेकर मौके की ताक में था। मसद्दी ने सिर पर बांस के घास का बोझा उठाया हुआ था जबकि तुलसी ने पीछे से उसकी गर्दन पर चोट दे मारी। गर्दन का धड़ से नाममात्र का ही सम्बन्ध रहा। मसद्दी इतना शक्तिशाली था कि उसने गिरकर भी काफी संघर्ष किया। तुलसी ने बुधी सिंह तथा बुग्गा बगैरा ग्रामीणों की सहायता से शव को ऐसी जगह फैंका जहां कि उसे देखा जाना मुश्किल था।

इस दौरान तुलसी ने अपने छोटे भाई मोहन, जो घर में रहता था तथा साधारण प्रकृति का था, को पक्का कर दिया था कि वह अपराध को अपने जिम्मे स्वीकार कर ले क्योंकि उसे तुलसी के प्रभाव से छुड़वाया जा सकता था जबकि तुलसी को छुड़वाने वाला कोई नहीं था। यही कुछ हुआ। मोहन ने स्पष्टरूप से हत्या की स्वीकारोक्ति कर ली। मोहन को गिरफ्तार करके बिलासपुर ले जाया गया। गुप्तचरों के माध्यम से राजा और उच्चाधिकारियों को विश्वास हो चुका था कि वास्तविक हत्यारा तुलसी है न कि मोहन।

मोहन पर बीसियों अमानवीय अत्याचार ढाए गए। लोहे की गर्म सलाखों से उसके पुट्ठों को दागा गया। चारपाई के नीचे उसके हाथों को रख कर कई जवान चारपाई पर बैठे रहते, तीसरे दर्जे की अन्य कई यातनाएं दी गईं किन्तु मोहन टस से मस न हुआ।

तीन महीने तक मुकद्दमा चला और मोहन को मृत्युदण्ड सुनाया गया। आषाढ़, सम्वत् 1980 (जून जुलाई, 1924) को बेड़ी घाट में पंजपीपलू के स्थान पर दिन के बारह बजे मोहन को खुले रूप में फांसी देने का का आयोजन किया गया। इस घटनावृत को लोक कवि इस प्रकार वर्णित करता है :

बारह बजी गए ओ मोहणा बारह बजी गए, राजे रीया घड़िया बारह बजी गए।
खम्बे गड्डुरे ओ मोहणा खम्बे गड्डुरे, इस साण्डुए रे मदाना खम्बे गड्डुरे॥

फांसी पर चढ़ने से पहले नियमानुसार अपराध के विषय में उसे तीन बार पूछा जाना था। उसने तीनों बार अपराध स्वीकार कर लिया सम्भवत: इस आशा के साथ कि मेरा भाई अभी भी मुझे छुड़वा लेगा। नियम तोड़ कर राजा ने चौथी बार फिर पूछा कि मोहन सच बता दो, तुम निरपराध हो। उसने फिर जुर्म कबूल कर लिया। अन्तत: राजा ने उसकी अन्तिम इच्छा पूछी मोहन की बांसुरी बादन में गहरी रूचि थी। लोक कवि ने भी मोहन से प्रश्न पूछा है :

किस बजणी ओ मोहणा किस बजणी, तेरी सत्तां बन्दां वाली बांसुरी किस बजणी।

मोहन ने बांसुरी वादन की इच्छा व्यक्त की। उसकी बांसुरी उसे दे दी गई, जो अभी भी मोहन के घर सुरक्षित है। भ्रातृप्रेम के दीवाने मोहन ने जी भर बांसुरी बजाई और भ्रातृकृत अपराध का फल भोगने के लिए फांसी का फंदा चूम लिया। सांडू के मैदान में विशाल जनसमूह

मोहन की अन्धश्रद्धा और अटूट विश्वास को देख रहा था। मोहन की फांसी के बाद राजा विजय चन्द ने वास्तविक अपराधी तुलसी को भी आजीवन कारावास की सजा दे दी। सम्वत् 1989-90 में राजा विजय चन्द के पुत्र राजा आनन्द चन्द के राज्यभिषेक के समय परम्परा के अनुसार मुक्त किये जाने वाले कैदियों में तुलसी भी था।

दूसरी ओर मोहन की पत्नी लाल देई जो 26-27 वर्षीय मोहन की विधवा बन चुकी थी, ने जीत सिंह और सुन्दर सिंह नामक अपने दो अनाथ और अबोध पुत्रों को 48 बीघे जमीन के साथ बड़ी निष्ठा और धैर्य से सम्भाला। लाल देई भाद्रपद, 2036 (सन् 1979) में ही स्वर्ग सिधारी है।

आज न मोहन है न उसके सहोदर, किन्तु बांसुरी वादक, शिकारी व घुड़सवार युवक मोहन का भाई के लिया किया गया प्राणोत्सर्ग सदियों तक याद किया जाता रहेगा।

राजकीय उच्च विद्यालय गण्ढीर,
जिला बिलासपुर १७४ ०२६ हि०प्र०

भरमौर का बांढा

● अमर सिंह रणपतिया

भरमौर क्षेत्र में जहां हरणनाट्य अपनी विशेषता रखता वहां बांढानाट्य भी अपनी विशेषता लिए है । जहां हिमाचल के अन्य स्थानों-मंडी, बिलासपुर और कांगड़ा में यह नाट्य दशहरे और दीपावली के उत्सवों के दौरान मनाया जाता है, भरमौर क्षेत्र में इस नाट्य को मनाने का समय असूज मास की आरंभिक तिथियां हैं। असूज मास में भरमौर की जन-जाति अपने प्रवास की तैयारी में लगी होती हैं इसीलिए असूज मास इस उत्सव को मनाने के लिए उपयुक्त समय माना जाता है। पुराने जमाने में प्रवास की यात्रा सुगम नहीं थी। प्रवास यात्रा के लिए बाल-बच्चों और माला मवेशी के साथ सारे परिवार को चलते-चलते कई सप्ताह लग जाते थे। ऐसी परि-स्थितियों में लोग अपने सगे सम्बन्धियों से जाने के पूर्व भेंट वार्ता करते थे जिसके लिए ऐसे उत्सव आपसी मेल जोल के लिए अच्छे साधन थे। ऐसे समय पर अतिथि सत्कार और सगे सम्भियों की आवभगत करने का उपयुक्त समय मिल जाता था।

भरमौर के बांढें, कांगड़े के बांडे और मण्डी, बिलासपुर के बांठड़े में सांगो-पांग समानता पाई जाती है। क्षेत्र भिन्नता के आधार पर थोड़ी बहुत असमानता स्वभाविक है।

श्री एम० आर० ठाकुर ने अपनी पुस्तक **हिमाचल के लोक नाट्य और लोकानुरंजन में** बाण्डा नाट्य पर सम्वाद सहित विस्तृत वर्णन किया है। इन्होंने इसी पुस्तक के 74 पृष्ठ पर इस शब्द की उत्पत्ति पर अपनी कलम उठाई है। उनके अनुसार — बाण्ठड़ा शब्द का सम्बन्ध भाण्ड शब्द से जुड़ता है। भाण्ड शब्द स्वयं संस्कृत शब्द भाण से उत्पन्न हुआ है। संस्कृत साहित्य के अनुसार **भाण** दृश्य काव्य का एक रूपक है, जिसमें हास्य की प्रधानता रहती है और प्राय: एक अंक का होता है। इस दृष्टि में भाण, सादृष और प्रहसन को लोक-शैली के नाट्य रूपक कहा जा सकता है।"

बांढा नाट्य उत्सव भरमौर में चण्होता, क्वार्सी गुटकर और दियोल गांव में असूज मास की विभिन्न तिथियों को मनाया जाता है।

चण्होता क्षेत्र का बांढा नाट् उत्सव

यह नाट्य उत्सव असूज मास की प्रथम तिथि (सैरी) से आरंभ होता है। यह उत्सव पहले दिनों नौ तिथि तक सभी दिन बड़े धूम-धाम से मनाया जाता था। उस समय इस उत्सव को बड़ा महत्व दिया जाता था परन्तु समय के थपेड़ों के साथ-साथ इसका महत्व अन्य उत्सवों की तरह कम हो गया है। अब यह उत्सव केवल एक दिन मनाया जाता है। इस उत्सव की दिन में ही तैयारियां शुरु हो जाती हैं। दिन को एक वृक्ष खींचने की प्रतियोगिता होती है। यह परम्परा पुराने समय से ही चली आ रही है। कहा जाता में कि रजवाड़े के समय भी इस प्रतियोगिता को इतना महत्व दिया जाता था कि लोगों को इसके लिए कोमल और लम्बे चील या देवदार-वृक्ष को काटने की अनुमति थी। यदि गिरते समय वृक्ष की टहनी की चोटी टूट जाती तो अन्य वृक्ष काटने की आज्ञा दी जाती थी। यहां तक कि इसी प्रकार यदि टहनी की चोटी (सिरा) टूटती रहती तो नौ वृक्षों तक काटने की आज्ञा थी। अब भी उसी नियम का अनुसरण किया जाता है परन्तु यह सावधानी रखी जाती है कि वृक्ष का सिरा न टूटे। प्राय: एक ही वृक्ष को काटा जाता है। वृक्ष के सिरे टूटने की कम सम्भावना रहती है। अब वृक्ष को रस्से की तरह खींचने की प्रतियोगिता होती है।

प्रतियोगी दल का चुनाव बड़ी सावधानी से किया जाता है। एक दल चण्होता क्षेत्र से लिया जाता है तथा दूसरा दल अन्य किसी गांव से लिया जाता है। विजयी दल हर्ष ध्वनि और जय-जय कारों से सारी रावी घाटी को गुंजायमान करता है। यह प्रतियोगिता भी मनोरंजन का एक बहुत बड़ा साधन समझा जाता है। जहां आज मनोरंजन के आधुनिक साधन उपलब्ध हैं वहां पुराने समय इस प्रकार के साधनों से काम लिया जाता था। कुश्ती और कौड़ी खेलना भी ग्रामीण मनोरंजन के प्रचलित साधन हैं। कई स्थानों पर कुश्ती भी इस प्रकार मनोरंजन और शरीर को हृष्ट पुष्ट रखने का साधन है। वृक्ष खींचने की प्रतियोगिता भी शारीरिक स्वास्थ्य को परखने का उत्तम साधन है। आज मनोरंजन के साधन उपलब्ध होने पर भी इसका प्रचलन परम्परागत ढंग से प्रथा के तौर उसी तरह चला आ रहा है।

बांढे का आयोजन मन्दिर में किया जाता है। चण्होता गांव में लक्ष्मी नारायण (विष्णु) शिव और नाग के मन्दिर हैं अत: बांढे को मन्दिर के खुले प्रांगण में हो किया जाता है। लोगों का कथन है कि बांढे का आयोजन नौ दिनों तक लगातार किया जाता था अत: प्रकाश की व्यवस्था की अत्यधिक आवश्यकता रहती थी। हर परिवार का सदस्य एक जंगणी का गट्ठा ले आता था इसे ऊपर से ऊपर चिना जाता था ताकि ऊंची लपट दूर-दूर तक प्रांगण में प्रकाश पहुंच सके। साथ में ही आग का घियाण (अलाव) भी जलाया जाता था ताकि वातावरण में गर्मी रहे और लोग आसपास बैठ सके।

जैसे कि पहले लिखा गया है कि आजकल यह बांढा एक रात को ही मनाया जाता है। अब भी प्रकाश की व्यवस्था जंगणी (दयार और कैल की बिरोजा-युक्त लकड़ी) का प्रयोग किया जाता है। हर परिवार का व्यक्ति इस नाट्य का आस्वादन लेने के लिए शौक से भाग लेता है।

बांढे में मनोरंजन का मुख्य साधन स्वांग का आयोजन है। हरण नाट्य की तरह बांढे में भी विभिन्न स्वांगों का आयोजन होता है। अन्य बांढे उत्सव में चंद्रोली (चंद्रावली-पुरुष का स्त्री भेष में स्त्री पात्र का कार्य करना) का भाग नहीं होता परन्तु यहां के बांढे में चंद्रोली का स्वांग भी निकाला जाता है। हिरण और अन्य वन्य जन्तुओं का स्वांग का भी प्रचलन है। गद्दी और गद्दन का स्वांग भी बनाया जाता है।

हर स्वांग अपनी-अपनी वाक्पटुता दिखाने का प्रयत्न करता है। यद्यपि किसी कथा विशेष का अभिनय अनिवार्य नहीं है फिर सारी रात गाने, बजाने, नाचने, और हंसी-मजाक से दर्शकों को व्यस्थ रखा जाता है। सम्वाद भी कोई निश्चित नहीं होते हैं। अपनी वाक्पटुता और हाज़िरजवाबी से वातावरण को कुतुहलापूर्ण बनाया जाता है। थोड़ी-थोडी देर के बाद हंसी के फव्वारे फूटते रहते हैं।

चण्होता का बांढा समाप्त होते ही क्वार्सी का बांढा आरम्भ हो जाता है। क्वार्सी चण्होता से आठ या दस कि० मी० के फासले पर एक सुन्दर स्थली है। यह गांव चारों ओर से ऊची-ऊची पहाड़ियों से घिरा है। चारों ओ सुरम्य जंगल है। मध्य मे सुन्दर गांव है। नाग का मन्दिर गांव के ठीक बीच में है। यहां असूज मास की तीन तिथि को बांढे का आयोजन किया जाता है। बांढे में प्रकाश की व्यवस्था और घियाण (अग्नि का प्रज्वलन) भी उसी प्रकार होता है। जैसा चण्होते में स्वांग भी पूर्वलिखि ढंग से आयोजित किये जाते हैं। गुटकर और दयोल गांव में भी इसी प्रकार के बांढा नाट्यों का आयोजन किया जाता है।

प्रधानाध्यापक, राजकीय उच्च विद्यालय गुआं
डा० प्रीणा, वाया मैहला, जिला चम्बा (हि०प्र०)

देवी देवता

हिमाचल भूमि के माहुनाग

● शास्त्री दीना नाथ गौतम

हिमाचल प्रदेश में अनेक देवी-देवता वास करते हैं। ऋषि मुनियों से लेकर नाग, सिद्ध, गुगे आदि सभी यहां देवता स्वरूप माने जाते हैं। भले ही वेद, उपनिषद् और शास्त्र इतिहास आदि में देवताओं, ऋषियों-मुनियों और साधकों की श्रेणियां वर्गीकृत क्यों न हो। परन्तु हिमाचल की तराइयों में रहने वाले ये लोग समस्त श्रेणियों के साधकों को देवता स्वरूप मानते हैं। इसलिए यहां की कर्मकाण्ड पद्धतियों में किसी यज्ञानुष्ठान का संकल्प लेते हुए पुरोहित भी यजमान के हित में मन्त्रोच्चारण करते हुए **मण्डलान्तर्गत समस्त देवताभ्यो: नमः** कहता है। अर्थात इस यज्ञ में या अनुष्ठान में यजमान के कुल का कोई भी देवता किसी भी श्रेणी का हो उसे हम नमस्कार करना चाहते हैं। और यहां पर प्रत्येक परिवर का अपना-अपना देवता है जिसको **कुलज** कहा जाता है जिसका सामान्य अर्थ परम्परागत कुल देवता होता है। हमारे शास्त्रों में तेंतीस करोड़ देवताओ का बखान जो किया जाता है वे सम्भवत: चालीस लाख हिमाचलियों के घर आंगनों में पूजे जाते हों, इसमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं। इसी तरह हिमाचल प्रदेश में आज के युग (विशेषकर मण्डी) में देवियों में चामुण्डा माता तथा देवताओं में माहुनाग का बोलबाला है। यह दोनों देवी देवता युगानुसार चमत्कारी एवं अत्यन्त प्रभावशाली माने जाने लगे हैं।

यद्यपि माहुनाग देवता के विषय में इतिहास पुराण चुप हैं। यह कौन सा नाग है अनन्त नाग, वासुकी नाग, पद्मनाभ नाग, कमल नाग, शंखपाल, धृतराष्ट्र, तक्षक और कालिया नाग ऐसे बहुत नागों का नाम इतिहास पुराणों मे यत्र-तत्र सर्वत्र आता है। परन्तु माहुनाग नाम किसी भी शास्त्रोक्त पृष्ठों में नहीं मिल पाता है। इधर मण्डी जनपद के अन्तर्गत तहसील चच्योट के सेगली तरौर तथा तहसील करसोग के मुख्यालय से अठाईस किलो मीटर की दूरी पर माहुनाग गांव में और तहसील सदर की प्रख्यात भील रिवालसर के समीप लेहड़ा गांव में, बल्ह क्षेत्र के गुटकर गांव में तथा ग्राम पचांयत टाण्डू की प्रंग सिरा क्षेत्र के कासला ग्राम में इस नाग देवता के प्रसिद्ध स्थान बने हुए हैं और यह देवता जागृत माना जाता है।

इसके अलावा तहसील चच्योट के ही शिकारी देवी चोटी पर झील कमरूनाग में भी कमरू नाग के नाम से नाग देवता जाने जाते हैं किन्तु इनको 'ज्येष्ठ देवता' अर्थात लोक भाषा में बड़ा देऊ कहा जाता है जो प्रशासनिक तौर पर भी अग्रणी देवता माना गया है। मण्डी जनपद के प्रसिद्ध शिवरात्री मेले में सरकार की ओर से इस देवता को आमन्त्रित किया जाता है और यह देवता कहीं भी आयोजित प्रबन्ध से नाराज हो जाए तो यह मेले के दिनों अतिवृष्टि करवा देता है जिससे मेले कामयाब नहीं हो पाते। व्यापार ठप्प होता है और सांस्कृतिक कार्यक्रम अधिक वर्षा के कारण बन्द करने पड़ते हैं। फिर सम्मानित लोग उक्त देवता से प्रार्थना करते हैं मनाते हैं, बकरे की बली चढ़ाते हैं, तब कहीं बादल छूट जाते हैं और आसमान साफ होता है। मेले की रौनक बढ़ती है, व्यापार चलता है तथा सभी लोग कहते हैं यह कृपा बड़ा देऊ कमरूनाग की है।

यूं भी मनोरथ सिद्धि के लिए जिला मण्डी के लोग इस देवता को तरह-तरह की मनौतियों से मनाते हैं। इसके साथ ही तहसील सदर के ज्वालापुर क्षेत्र में बरनाग या बरद नाग देवता भी हैं। जो भारी वर्षा होने के कारण भयभीत पहाड़ी किसानों को आसमान साफ करने में मदद करते हैं। अपने भण्डार मन्दिर सनोड़ गांव से उठकर रथ में झील पराशर के पास बान्धी सनोर ग्राम में चला जाता है वहां महर्षि पराशर के आंगन में रात बिताता है और अतिवर्षण को हटा देता है। ऐसा लोगों का कथन है। किन्तु लोगों के विघ्न बाधाओं को दूर करने में गली बरोर गांव के समीप माहूनाग का रीढ़ी नामक पहाड़ी पर जंगल के मध्य विराजमान मण्डप चौतड़ा में जो माहुनाग रथ पालकी के रूप में विद्यमान है उसकी या कासला गांव प्रंगसिरा के माहुनाग की मान्यताएं अधिक हैं।

सर्वप्रथम मण्डी जनपद में सेगली प्ररोट ग्राम के समीप ही माहुनाग का प्रकट होना माना जाता है। लगभग अर्द्धशताब्दी पहले की किम्वदन्ती है कि दखणु नामक की एक महिला रोगग्रस्त हो गई और वह किसी भी प्रकार की औषधि का सेवन नहीं करती थी, उसे एक स्वप्न आया कि सगेली प्ररोट ग्राम के पास आकर माहुनाग का रीढ़ा नामक स्थान पर जो मण्डप मन्दिर बना है वहां आकर धूपबत्ती जगाओ तुम्हारा रोग दूर हो जाएगा। दखूणु ने ऐसा ही किया माहुनाग के रीढ़े की झाड़ियों में भारी जंगल में माहुनाग का चौतड़ा तलाश किया और उसकी पूजा की। दखणु रोग मुक्त हो गई। यह बात सर्वत्र हवा की तरह फैल गई। वहां के निवासी श्यामू और सिंह नामक दो भाइयों ने चौतड़े पर माहुनाग का मन्दिर स्थापित किया क्योंकि उपरोक्त दोनों भाइयों में उनके पिता स्वर्गीय सरत्वानी द्वारा अध्यात्मिक संस्कार डाले गए थे। वे ईश्वर भक्त थे। तब से सेगली प्ररौर के माहुनाग की मनौतियां मानी जाने लगीं।

इसी तरह लेहड़ा (रिवालसर) माहुनाग के भक्त ज्योतिषी देवराज शर्मा हुए जो रिवालसर झील के नजदीकी ग्राम रिपूर के निवासी थे। उन्होंने संस्कृत भाषा में एक बीस श्लोको स्तोत्र लिखा जिसका पहला श्लोक इस तरह है:

माहुनाग नमामि त्वां, उत्तरे शिखरे स्थितम् ।
तरौरा मिध ग्रामे च नाना वृक्ष समन्विते ।।

अर्थात मैं नागों में श्रेष्ठ माहुनाग को प्रणाम करता हूं जो तरौर नामक ग्राम के समीप उतर शिखर पर वृक्षों से घिरे हुए मण्डप में वास करता है ।

इधर ब्रगसिरा इलाके के कासला गांव में स्वर्गीय मास्टर परमदेव को साधना दृष्टांत होने पर माहुनाग ने अपनी वासभूमि लगभग तीस वर्ष पूर्व निश्चित की। माहुनाग के सभी स्थानों में रविवार व मंगलवार को अत्यन्त भीड़ रहती है। भक्तजन न केवल प्रदेश भर से ही अपितु पंजाब, हरियाणा व दिल्ली आदि से भी प्रश्न डालने या मनौतियां मनाने आते हैं। लोगों का विश्वास है कि इस भयंकर कलयुग में माहुनाग के स्मरण मात्र से भूत प्रेत, पिशाच, यक्ष, राक्षस, डाकणी-शाकणी, जादू-टोना सब दूर भाग जाते हैं। सांप या बिच्छू काट जाए तो केवल मात्र धागा (डोरी) पहनने से विष उतर जाता है। इसके अलावा लूत, फोड़ा, फुन्सी, नाना प्रकार की व्याधियां पागलपन सब दूर हो जाते हैं। यहां तक की पशुओं की व्याधियां भी माहुनाग दूर करते हैं। यह विश्वास केवल हिन्दुओं में ही नहीं अपितु सिक्खों, मुसलमानों, गुज्जरों और बौधों भोटियों, में भी है। इससे लगता है कि वस्तुतः इस कलयुग में कोई चमत्कारी देवता प्रकट हुआ हो। लोग आते हैं और प्रार्थना करते हैं, धूप जलाते हैं कहते हैं। हे माहुनाग हमारा अमुक कार्य सिद्ध हो जाए तो हम तुम्हारे मन्दिर में आकर श्रद्धानुसार दक्षिणा देंगे और सेवा करेंगे। रोग मुक्त महिला व पुरुष उपवास रखते हैं जिसे लोक भाषा में नुआसरा कहते हैं और उन्हें मनोवांछित फल प्राप्त होता है।

फल प्राप्ति के बाद यदि भक्त भूल जाए तो माहुनाग स्वप्न में अपनी नाराजगी व्यक्त करते हैं ताकि उसमें चेतना आ जाए और वह मन्दिर में आकर क्षमा मांगे। देव न्यायलय से पीड़ित होकर इस महान देवता का स्मरण करते हुए समय-समय पर देव देहली में आना भूल न जाए।

इन मन्दिर स्थलों में माहुनाग के गुरु (साधक) जयधारी वेष में खेलते हैं और श्रद्धालुओं के मौन मानसिक प्रश्न का सन्तोष जनक स्पष्ट उत्तर देते हैं। खेलते हुए चावल के दाने देते हैं सात दाने या पांच दाने आ जाए तो शुभ माने जाते हैं, छः या आठ दाने आने अशुभ माने जाते हैं। चार दाने आए तो मामला विचाराधीन माना जाता है। तीन या नौ दाने आ जाए तो सतयुग का वचन माना जाता है जो सर्वोत्तम कहा जाता है।

यह दाने खेलते हुए गुर अपनी बायीं हथेली से दाहिने हाथ की अंगुलियों या अंगूठे की सहायता से उठाकर श्रद्धालु के दाएं हाथ की हथेली पर रखता है। वह गिनता है सात पांच हों तो सिर माथे ग्रहण करता है। आठ छः हो तो गुर को लौटा देता है। तब गुर देवता से और

प्रश्न करता है। जब देवता किसी निश्चित बात पर आ जाए तो गुर शेष धागा देता है। शेष का अर्थ फूल से है और धागे का अर्थ मोटे सूत से है। प्रश्नकर्ता घर से दाने व वस्त्र, स्पर्श करवाकर रोगी से पशुओं से, या मकान से लाता है और गुर अपनी लहर में आकर खेलते हुए उसको बता देता है कि यह प्रश्न किस सम्बन्ध में और कहां से है तथा इसका उपचार व उपाय क्या है।

आखिर कोई चमत्कार है। ऐसा हमें बीसवीं शताब्दी के इस वैज्ञानिक युग में मानना ही पड़ेगा। मन्दिरों में काष्ठ व पाषाण शिलाओं पर नाग की शक्लें बनाई गई हैं और यूं भी हिमाचल प्रदेश के सभी प्राचीन मन्दिरों में नाग आकृतियां सर्वत्र खेड़ी (उकेरित) की गई हैं। कहीं-कहीं तो बाऊड़िआं (बावड़ियां) के आस पास भी नागों से सम्बंधित शिलालेख अंकित हैं। इसलिए प्रतीत होता है कि हिमाचल भूमि नाग देवताओं की वास भूमि भी है।

गौतम बिहार, टाण्डू
जिला मण्डी, हि० प्र०

ज़िला ऊना का बाबा रूद्र

● ईश्वर दुखिया

देवभूमि हिमाचल को इसमें विद्यमान देवस्थानों के कारण गौरव प्रदान है। एक ओर जहां प्रकृति नटि ने यहां जी खोलकर सौन्दर्य छटा बिखेरी है वहां दूसरी ओर इस प्रदेश के प्रत्येक गांव में किसी न किसी देवता का छोटा बड़ा मन्दिर मौजूद है। इन मन्दिरों में कुछ को तो देश-विदेश में ख्याति प्राप्त होने का विशेष गौरव प्राप्त है। उदाहरणार्थ कांगड़ा की ब्रजेश्वरी देवी तथा ज्वालामुखी, चम्बा का लक्ष्मीनारायण मन्दिर, कुल्लू का रघुनाथ मन्दिर, मण्डी का भूतनाथ तथा रिवालसर, हमीरपुर का बाबा बालकनाथ, बिलासपुर की नैणादेवी, सिरमौर का पांवटा साहब तथा रेणुका और ऊना की छिन्न मास्तिष्का चिन्तापुर्णी एवं डेरा बाबा रूद्र।

बाबा रूद्र का डेरा बहुत अर्से तक एकमात्र मन्दिर रहा है जहां चौबीस घण्टे लंगर व्यवस्था चालू है। यह डेरा ऊना से लगभग 12 कि॰मी॰ की दूरी पर स्थित है। ऊना-अम्ब सड़क पर बसाल नामक स्थान पर उतरकर 4,5 कि॰मी॰ पर नारी चरोला नामक स्थान पर स्थित है। यह भी एक प्राकृतिक खेल ही समझिए की जिस स्थान पर आज यह आश्रम स्थित है वहीं पर, ऐसा कहते हैं कि आज से लगभग 400 वर्ष पूर्व पांच साधु आए और लम्बे अर्सा तक तय साधना करने के पश्चात कलियुग के डर से लोगों की मुक्ति के लिए समाधि समा गये और वहां आज पांच पीपल के वृक्ष हैं, जिसके लिए लोगों का विश्वास है कि उन्हीं महानुभावों के परिवर्तित रूप हैं। ऐसा भी विश्वास किया जाता है कि यदि कोई पागल मनुष्य या सांप-कटा श्रद्धापूर्वक इन्हे पीपलों की परिक्रमा ले तो ठीक हो जाता है।

यहीं पे 123 वर्षों से एक अखण्ड धूना जल रहा है जो बाबा रूद्र के ज्योति जोत सभा के समाए से पहले से चला आ रहा है। अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि बाबा रूद्र कौन थे, कहां से आए तथा किस प्रकार चमत्कारिक शक्ति प्राप्त की।

इस विषय में लोगों में निम्न लोककथा प्रचालित है। रूद्र, आज के इस बाबा रूद्र के डेरा के पास ही के गांव बड़साला के निवासी थे तथा इनके परिवार वाले घी का व्यापार करते थे

इसीलिए इनके परिवार के लिए घेढी भल पड़ चुकी थी। बचपन से ही रूद्र की वृति साधु सन्यासियों की सेवा मे रत्त रहने की थी।

एक बार रूद्र अपने तायों चाचों के साथ होश्यारपुर घी बेचने जा रहे थे। सब लोग अपनी अपनी मटकियां सर पे उठाये चल रहे थे। रास्ते में कटाहर धार में उन्हें साधुओं का डेरा मिला जो रोटी बनाने की तैयारियां कर रहा था। आगे रूद्र के ताये चाचे थे सो साधुओं ने उनसे रोटी बनाने के लिए कुछ घी मांगा परन्तु उन लोगों ने साधुओं को करारा उत्तर देते हुए कहा कि तुम्हें घी देने वाला पीछे आ रहा है (उनका संकेत रूद्र की ओर था जो अपनी मौज में चलता हुआ तायों चाचों से पीछे रह गया था)। बालक रूद्र भी चलते चलते साधुओं के पास पहुंचा तो उससे भी घी मांगा गया। उसने बड़ी प्रसन्नता का अनुभव किया तथा मटकी उतार कर उनके आगे रखदी। उन्होंने (साधुओं ने) जी भरकर घी का प्रयोग किया। मटकी में थोड़ा सा घी शेष बचा तो बालक रूद्र को आशीष देकर विदा किया। यह कोई दैवी चमत्कार ही था कि अपने तायों चाचों से पीछे रह गया हुआ रूद्र लगभग उनके साथ ही अपने गन्तव्य स्थान पर पहुंच गया। जब सभी अपना घी तुलवाने लगे तो रूद्र यह देखकर आश्चर्य चकित रह गया कि उसकी मटकी भी पूरी की पूरी घी से भरी हुई है। रूद्र ने अपने तायों चाचों से कहा कि उसका घी भी वही ले लें। और वह वहां से उन साधुओं की तलाश में दौड़ पड़ा व दौड़ता हांफता रूद्र उस स्थान पर पहुंच गया जहां उसने साधुओं का घी दिया था। परन्तु यह क्या ..? वहां तो साधुओं का नामोनिशां ही नहीं था। रूद्र तो जैसे बावला हो गया हो। उन साधुओं को खोजने में इधर उधर भटकने लग पड़ा तथा अन्त में उसने उन्हें खोज ही निकाला। उसे पता चल गया वे साधु वणखण्डी की चीनी घाटी में रहते है। फिर क्या था रूद्र उनके आश्रम में जा पहुंचा। साधुओं के गुरुजी महाराज ने उसे वहां देखते ही पूछा—आ गये बेटा ?' रूद्र ने चरणस्पर्श किये तथा चरणों में शरण मांगी तो गुरु महाराज ने उसे कहा चलो हमारी गउएं चराया करो। रूद्र ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य मान पूरी लग्नता से गुउओं की गुरु की सेवा आरम्भ कर दी। रूद्र के सेवा भाव तथा गुरुभक्ति से वह अति प्रसन्न हो गये परन्तु दूसरा ओर अन्य शिष्य उससे ईर्ष्या करने लगे।

एक दिन कहते है कि उस साधुओं के डेरे पर एक स्त्री विलाप करती हुई आई और गुरु महाराज से अर्ज करने लगी कि उसके इकलौते बेटे को एक अघोरी साधु उठा ले गया है। गुरु ने तत्काल अपने शिष्यों को उस अघोरी साधु की तलाश में चारों ओर को भेज दिया। परन्तु सभी असफल वापिस लौट आये। फिर गुरु महाराजा ने कहा कि रूद्र को बुलाओ। रूद्र गउएं चरा रहा था। उसे लाया गया तो वह आकर गुरु के सामने हाथ जोड़ आज्ञा पाने के लिए खड़ा हो गया। गुरुजी ने कहा कि बेटा रूद्र जाओ एक अघोरी साधु बच्चा उठा ले गया है उस की तलाश करो व बच्चे को जिन्दा वापस लाओ। कहते हैं रूद्र के तलाश करने से पूर्व ही बच्चे को अघोरी साधु खा चुका था। परन्तु रूद्र की प्रार्थना रंग लाई गुरु का योग सहाई हुआ और अस्थियों से ही बच्चा पुन: जीवित हो गया। रूद्र ने बच्चा लाकर मां को दे दिया।

इसी प्रकार जीवन चलता रहा गुरुभक्ति का रंग रूद्र पर चढ़ता गया और अन्य शिष्यों की ईर्ष्या बढ़ती गई। आखिरकार वह दिन भी आ गया जब गुरु महाराज ने समाधि समा जाना था। उस दिन शिष्य गुरु का अन्तिम आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए उनकी सेवा में लगे रहे। रात्रि समय जब रूद्र गउएं चराकर आश्रम वापस आया तो उसको भी गुरु सेवा का अवसर प्राप्त हुआ। वह भी गुरु महाराज की टांगे दबाता रहा। जब गुरु महाराज ने देखा कि अन्य शिष्य सो गए हैं तो उन्होंने रूद्र से भी आराम करने के लिए कहा। पर रूद्र को तो गुरुसेवा में ही अनन्त आराम मिल रहा था सो उसने कहा मुझे आराम मिल ही रहा है। इतने में गुरु जी ने अपना झोली चिमटा उठाकर रूद्र को दिया और उसे रातों रात कहीं दूर निकल जाने के लिए कहा।

अब रूद्र वहां से चल पनोह नामक गांव के पास आकर बैठ गये और वहीं पर अपनी तपस्या आरम्भ कर दी। पनोह वासियों ने उन्हें बुरा भला कहकर वहां से उठने पर मजबूर कर दिया। जाते जाते वह गांव वासियों को एक अभिशाप दे गये जिसमें उन्होंने चाहा था कि उनकी जमीन में से आज की स्वां नद (गब्बर गंगा) बहे उनके जाने के बाद ठीक ऐसा ही हुआ भी।

तत्पश्चात वह वहां से नारी चरोला में एक कुटिया बना कर रहने लगे। कहते हैं कि वह एक पतीली में थोड़े से चावल बना लिया करते तथा दूसरी में दाल। फिर दिन भर जितने भी दो-चार दस-पांच व्यक्ति वहां आते, उन्हीं चावलों और दाल से उन्हें भोजन कराते रहते। धीरे-धीरे उनकी महता बढ़ती गई, फैलती गई और डेरे के निर्माण का कार्य चलता रहा। लोगों की इच्छाएं पूरी होती गई और डेरा आज के एक सुरम्य स्थल का रूप धारण कर गया।

कहते हैं कि एक बार पास के किसी गांव में एक औरत बड़ी क्रूर थी। वह बहू को हांडी में साग चढ़ाकर पकाने के लिए कह कर स्वयं खेतों में काम करने चली गई। बहू की डेरे में अत्यधिक श्रद्धा तथा आस्था थी। कड़छी चलाते चलाते हांडी पैंदे से टूट गई। सास के डर से बहू ने बाबे की मन्नत की कि आज इस हांडी में साग पक जाए तो वह बाबे के दर्शनार्थ आएगी। प्रभु की माया। उसी टूटी हुई हांडी में उस दिन बहुत ही स्वादिष्ट भोजन पका। जब बहू मन्नत चढ़ाने बाबे के डेरे पहुंची तो रूद्र जी महाराज ने कहा—बेटा भविष्य में ऐसी मन्नत न करना। देख तेरा साग पकाते पकाते मेरा हाथ जल गया है।'

इसी प्रकार कहते हैं कि एक बार एक अन्य साधु आया और उसने डेरे के व्यक्तियों से कुछ घी मांगा। घी के लिए उसने अपने पास से एक सीपी रख दी। डेरे के लोग घी से सीपी को भरने लगे परन्तु वह तो भरने का नाम ही न लेती। डेरे का सारा घी समाप्त हो गया। अब केवल जोत का घी ही शेष बचा था। डेरे के लोग बाबा रूद्र के पास गए। उनकी आंखे उनकी भवों से ढक चुकी थीं सो उन्होंने अपनी भवें ऊपर उठाई और सारी बात सुनी। सुनकर लोगों को जोत का घी लाने के लिए कहा जिसमें से घी की एक बूंद साधु को सीपी में डाली और सीपी के घी में

उछाल आ गया। साधु ने उनके चरण छुए परन्तु बाबा रूद्र ने उसे डांट फटकार दी तथा भविष्य में कभी ऐसा ना करने के लिए कहा। उन्होंने उसे कहा कि मूर्ख ऐसा करने में उसने अपनी कमाई भी गंवाई और उनकी कमाई भी लगवाई।

एक समय इस क्षेत्र में अकाल स्थित बन गई जिससे मुक्ति के लिए उन्होंने लोगों को कहा कि वे पांच दिन तपस्या करेंगे तथा पांचवें दिन लोगों द्वारा एक यज्ञ का आयोजन करेंगे। यदि प्रभु ने चाहा तो अवश्य वर्षा होगी। ठीक पांचवें दिन यज्ञ किया गया और यज्ञ करते करते ही इन्द्र देवता ने मां धरती की सारी प्यास बुझा दी। उसी समय से पंचभीष्म का मेला प्रतिवर्ष मनाया जाता है। जिस दिन महाखिचड़ी पकाई जाती है तो श्रद्धालु भक्त दूर-दूर से दही तथा घी लाकर चढ़ाते हैं।

इस समय इस आश्रम की व्यवस्था देश के जाने माने प्रकाण्ड विद्वान तथा अध्यात्म की ज्योति सर्वश्री स्वनामधन्य सुग्रीवानन्द जी के कुशल हाथों में है जो विद्वता तथा अध्यात्म दोनों को एक ही देह में समाए हुए इस आश्रम में से प्रकाश पुञ्ज फैलाकर लोगों की मनोकामनाओं की पूर्ति में सहायक होकर डेरे की प्राचीन परम्परा तथा गौरव को कामयाब रखे हुए हैं।

गांव सुकड़याल, डाक० भ्यारवी,
ज़िला ऊना (हि०प्र०)

दो संस्कृतियों का संयोजक

केलांग देवता

● तोबदन

केलांग लाहुल में स्थित एक स्थान का नाम है। जिला लाहौल और स्पिति का यह मुख्यालय है। लेकिन इस लेख में वर्णित विषय से इस तथ्य का सम्बन्ध लेश मात्र का है। हमारी रुचि यहां पर पूजे जाने वाले एक देवता में है जिसे केलांग के निवासी **केलांग सद्** अर्थात **केलांग देवता** के नाम से जानते हैं। यह देवता बहुत शक्तिशाली अथवा महत्वपूर्ण नहीं है लेकिन यह बहुत पुराना है। यहां के लोग इसे प्राचीन काल से पूजते आ रहे हैं।

शीतकाल के मध्य, जनवरी-फरवरी माह में, जब धरती पूर्णतया श्वेत परिधान (बर्फ) में लिप्त होती है तब केलांग में एक त्यौहार मनाया जाता है। यह त्यौहार **गोची** के नाम से जाना जाता हैं। इस दिन केलांग देवता का पूजन होता है। इस देवता का बौद्धधर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है जो मुख्यतः यहां के लोगों का धर्म है अपितु यह आदि देवता है, यहां के आदि धर्म से संबंधित है।

यह त्यौहार मुख्यतया उन लोगों को बधाई देने का त्यौहार है जिनके यहां इस वर्ष पुत्र उत्पन्न हुआ है। अगले वर्ष अन्य लोगों के घरों में भी पुत्र उत्पन्न हो इसकी भी इस त्यौहार में कामना की जाती है।

केलांग देवता इस त्यौहार का मुख्य केन्द्र है। इस दिन इस देवता की अराधना की जाती है। यह शुभ अवसर वर्ष में केवल एक बार आता है। इसलिए गांव का प्रत्येक परिवार जिसके घर इस वर्ष लड़का पैदा हुआ है, सत्तू, घी, छांग, और देवदार की हरी टहनियां देवता की भेंट में लाता है। पुजारी भी यही चीजें भेंट में लाता है। सत्तू को एक जगह पर ढेर लगा कर रखते हैं। घी इकट्ठा करके भेड़ की शक्ल बनाकर सत्तू के ढेर पर रखते हैं तथा देवदार की हरी टहनियों की धूनि जगाते हैं। तब गांव का लोहार नगारे बजाता है और पुजारी मन्त्र पढ़ते हुए पूजा करता है।

इस देवता के लिए रहने हेतु कोई देवालय नहीं है। ऊपर केलांग में इसका निवास स्थान एक खेत है तथा नीचे केलांग में यह एक देवदार के वृक्ष में रहता है। (उपर केलांग और

नीचे केलांग— केलांग कस्बे के दो भाग)। इसका चरित्र और स्वभाव शांत है और यह किसी भी प्रकार के प्राणी की बलि नहीं लेता है। यह पूर्णतया शाकाहारी और अहिंसक है। सत्तू, घी, छांग और देवदार के टहनियों की धूनि, यही इसके लिए आवश्यक अर्घ्य है। सारा साल यह सुप्त रहता है और वर्ष में एक ही दिन इसे जगाया जाता है।

लेकिन आदिकाल में केलांग देवता का रूप ऐसा नहीं था। तब यह हिंसक था और बलि लेता था—मानव बलि। क्योंकि इसे उस समय खेत और खलिहान का देवता माना जाता था, लोग अच्छी फसल की आशा से देवता को हर प्रकार से प्रसन्न रखने का प्रयास करते थे। इसलिए हर गांव का हर घर बारी-बारी से वर्ष में एक मनुष्य की बलि देना था। यह कहानी अभी तक लोगों में प्रचलित है। अनेक लेखकों ने इस रोमांचकारी कहानी का विस्तृत रूप से अपने लेखों में वर्णन किया है।[1 (a-b)]

ऐसा बताया जाता है कि प्राचीन काल में केलांग गांव के लोग प्रत्येक वर्ष हर घर से बारी-बारी से एक आदमी की बलि केलांग देवता को देते थे। ऐसा लोगों का विश्वास था कि इससे यह देवता प्रसन्न होता है और अच्छी फसल देता है। अपंग, अपाहिज, बीमार और दोषपूर्ण शरीर वाला व्यक्ति देवता को स्वीकार्य नहीं था। कुछ समृद्ध लोग अथवा जिसके घर बलि के योग्य उम्मीदवार नहीं होता था, बलि के लिए दास रखते थे। इसके लिए चुने गए मनुष्य को बलि के लिए नियत दिन से तीन दिन पहले खूब खिलाया जाता था। तब उसे नियत दिन पर गांव के लोग इकत्रित हो कर जलूस में देवता के निवास स्थान पर ले जाते थे। वहां उसकी बलि दी जाती अथवा उसको वहां पर कमरे में बन्द कर दिया जाता था जहां वह कुछ दिनों बाद धीरे-धीरे स्वयं समाप्त हो जाता था।

इस प्रकार एक बार एक ऐसे घर की बारी आई जिसमें केवल एक बुढ़िया और उसका एकमात्र पुत्र रहते थे। बलि के लिए उसका पुत्र चुना गया था। बुढ़िया इस बात से बहुत दुखित और चिन्तित हो गई। बलि के लिए निश्चित दिन निकट आ गया और अब केवल तीन दिन रह गए थे। वह बिलख-बिलख कर रोने लगी। उस दिन एक लामा भीख मांगता हुआ वहां आया। बुढ़िया को इस तरह रोते हुए देखकर उसे बहुत दया आई। उसने बुढ़िया से पूछा, 'मां ! क्यों रो रही हो ? क्या कारण है ? क्या कष्ट है ? अपना कष्ट मुझे बताओ, मैं तुम्हारी सहायता करुंगा।' बुढ़िया कुछ नहीं बोली, बस रोती ही रही।

बहुत मनाने पर उसने बताया, 'आज से तीन दिन तक मुझे अपने इकलौते प्यारे बेटे को खूब अच्छा-अच्छा खाना खिलाना है उसके पश्चात गांव के देवता को उसकी बलि दी जायेगी। इसलिए मैं बहुत दुखी हूं।'

---

1. a) **A.H. Francke** : i) 'The Ancient History of Lahoul' in his book 'History of Western-Tibet'. ii) Die historischen und mythologischen Erinnerungen Lahouler.
   b) **M.S. Gill** : Himalayan wouderland.

लामा बोला, 'मां आपके लड़के के स्थान पर बलि के लिए मैं जाऊंगा। आप निश्चिन्त हो जाएं। आप आज से मुझे भोजन देना आरम्भ कर दें।

बुढ़िया ने लामा की बात मान ली। उसने लामा का धन्यवाद किया। तब तीन दिन तक उसे खूब अच्छा-अच्छा भोजन कराया। निश्चित दिन आ जाने पर लोग लामा को खूब धूम-धाम से देवता के निवास तक ले गए। जिस समय जल्लाद अपनी कुल्हाड़ी लेकर लामा को मारने के लिए उसके निकट आया तो लामा ने जल्लाद से कहा, 'थोड़ी देर ठहरें, प्रिय मित्र! अपनी कुल्हाड़ी कृपया मुझे दें। मैं भी देखूं कि क्या यह देवता सचमुच मेरी बलि लेने का इच्छुक है?' तब वह लामा मूर्ति के निकट गया और वहां जा कर देवता को हाथ जोड़ कर बोला, 'हे देव! यदि आप वास्तव में मेरे प्राण लेना चाहते हैं तो मैं आपके समक्ष प्रस्तुत हूं अन्यथा मैं आपको समाप्त कर दूंगा।' काफी देर तक देवता से कोई उत्तर नहीं मिला। तब लामा ने देवता की मूर्ति पर, जो लकड़ी की बनी हुई थी, कुल्हाड़ी की चोट मारी और मूर्ति के टुकड़े-टुकड़े कर दिए। मूर्ति के टुकड़ों को भागा नदी में फेंक दिया, जो गांव के निकट ही बहती है।

इस कहानी का एक और रूपान्तर है। कथा के अनुसार इस देवता का निवास एक जंगली गुलाब की झाड़ी में था। बलि के दिन उस लामा को लोग उस झाड़ी के निकट ले गए जिसमें देवता रह रहा था। लामा ने सबसे पहले अपना बांया बाजू आगे करते हुए बोला, 'हे देव' मेरा यह बाजू लीजिए।' देवता ने कोई जवाब नहीं दिया। तब उसने दांया बाजू आगे किया। इस तरह करते हुए पैर, सिर आदि एक-एक करके सभी अंग और अन्त में सारा शरीर देवता को भेंट किया। लेकिन देवता ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया। अन्त में लामा ने गुस्से में आकर उस झाड़ी को उखाड़ा और नदी में फैंक दिया। इस तरह नरभक्षी देवता का अन्त हो गया। यह जानकर गांव के लोग खुशी-खुशी और लामा को धन्यवाद देते हुए सब अपने-अपने घरों को चले गए।

आगे ऐसा बताते हैं कि यह देवता, मूर्ति के रूप में अथवा गुलाब की झाड़ी के रूप में नदी में बहता हुआ योबरांग गांव (लाहुल में पट्टन घाटी में) तक पहुंच गया। वहां पर चम्बा के कुछ गद्दी लोगों ने जो उधर से गुजर रहे थे, देवता की इस दुर्दशा को देखकर उसे बचाने की इच्छा प्रकट की। लेकिन इस शर्त पर कि आगे से वह मनुष्य की बलि नहीं लेगा और केवल भेड़ अथवा बकरे की बलि लेगा। इस विषय में उनको पूर्व ज्ञान था। देवता इस समय किसी प्रकार से इन्कार ही करने की स्थिति में नहीं था। इसलिए उसने यह शर्त मंजूर कर ली। तब वे इस देवता को कुगती (भरमौर का एक गांव) ले गए और अपना देवता बनाया।

यद्यपि केलांग देवता को बहुत पहले केलांग गांव से बाहर निकाल दिया था फिर भी केलांग के लोग इस देवता को अभी भी मानते हैं, जैसाकि हमने ऊपर देखा। लेकिन अब उसका चरित्र पूर्णतया परिवर्तित हो गया है। ऐसा बताते हैं कि कुछ समय तक उसको भेड़ व बकरे की बलि दी जाती रही। लेकिन कलान्तर में वह पूर्णतया शाकाहारी, शान्तिप्रिय और अहिंसक बन गया।

सबसे बढ़कर इस घटना के बाद, वह डरपोक भी हो गया। लोगों का कहना है जब कभी देवता के चेले (गूर) पर देवता सवार होता है और लोग उसे ऐसा कहें कि तुम्हें मारने वाला लामा आ रहा तो चेला भागने लगता है अर्थात उस शक्तिशाली लामा का नाम सुनकर देवता डर जाता है।

उक्त कहानी केवल लाहुल में प्रचलित परम्परा के अनुसार है परन्तु यही परम्परा चम्बा में भी हूबहू मौजूद है। चम्बा में गद्दी लोग एक देवता को मानते हैं जिसे वे **केलंग देवता** कहते हैं। यह देवता यहां पर केलांग देवता के अतिरिक्त **केलांग नाग, कलिहार नाग, केलूवीर** आदि नामों से भी जाना है। इसका मन्दिर भरमौर तहसील में कुगती नामक गांव के निकट एक प्रमुख स्थान पर स्थित है।

चम्बा के पुराने गेजेटियर में इस देवता के विषय में यहां के लोगों में प्रचलित परम्परा और कथा को विस्तार से वर्णित किया गया है। इसे नये गेजेटियर में पूर्णतया उद्धृत किया गया है।[1] इस परम्परा के अनुसार वर्तमान केलांग देवता अथवा केलांग नाग को प्राचीन काल में **कलिहार नाग** के नाम से जाना जाता था। वह लगभग सोलह सत्रह पीढ़ी पूर्व लाहुल से चम्बा आया। उस समय कुगती के इलाके में पशुओं में एक संक्रामक रोग फैल गया था। लोगों ने केलांग देवता की मनौती की। यदि यह रोग कम हो जाए तो उन्होंने एक मेला मनाने का वचन दिया। उस समय केलांग देवता नाग के रूप में एक मेढे के सींगों पर सवार हो कर लाहुल से चम्बा की ओर चला। दुग्गी नामक स्थान पर पहुंच कर, जो केलांग देवता के वर्तमान मन्दिर से लगभग दो मील दूर है, वह रुक गया वहां वह तीन पीढ़ियों तक रहा। तब वह डाल्न नामक स्थान पर गया जहां चश्मा निकलता है। यह स्थान बहुत ठण्डा है और यहां आदमी का पहुंचना अत्यन्त कठिन है। तब लोगों ने देवता से उपासना की कि वह नीचे लोगों के आवास के निकट आ जाए। देवता ने अपने गूर अथवा चेले के माध्यम से लोगों को बताया कि वे उसके लिए एक भाना (एक वाद्य) बनवायें और उस स्थान पर एक मन्दिर बनायें जहां वे लाहुल से आने के बाद रुके थे। लोगों ने उसकी बात स्वीकार कर ली।

जिस समय मन्दिर बनाने के लिए नींव खोद रहे थे लोगों को तीन मुखों वाली एक मूर्ति प्राप्त हुई। जब उसे उठाया तो उस स्थान से पानी का एक चश्मा फूट पड़ा। यह मूर्ति पद्मासन मुद्रा में है। राजा श्री राज सिंह (जीवन काल ई० सं० 1755-1794, राज्य काल ई० सं० 1764-1794) ने बाद में एक और मूर्ति इस मन्दिर को भेंट की। यह मूर्ति लाठी लिये खड़े एक नाग की मूर्ति है जो अष्टधातु की बनी हुई है। सिर सांपों से ढका हुआ है, गले में चकलों की माला पहने है, जनेऊ भी डाला है तथा कमर में तेरागों (कमरबन्द) बान्धे और धोती पहने हुए है। यह मन्दिर प्रथम माघ से प्रथम बैशाख तक बन्द रहता है। प्राय: इसकी पूजा रविवार को की जाती है। इसको भेड़ अथवा बकरे की बलि दी जाती है। धीरे-धीरे इस देवता का प्रभाव इतना बढ़ गया कि अब यह संपूर्ण **कुगती घाटी और कुगती जोत** जो चम्बा और लाहुल के बीच पड़ती है और प्राय: लाहुल आने वाले गद्दी लोग इसका प्रयोग करते हैं, का प्रमुख देवता बन गया। बाहर से आने वाले लोग और विशेषकर शिकारी लोग इसको अवश्य मानते हैं। गद्दी लोग जब भी कुगती जोत को पार करते हैं इसकी पूजा करना नहीं भूलते।

1. **Thakur Sen Negi** (Editor): Himachal Pradesh District Gazetteers, Chamba.

इस परम्परा का **डॉ० वोगल** ने भी अपनी एक प्रसिद्ध पुस्तक में सविस्तार वर्णन किया है।[1] इसके अतिरिक्त वे एक और कथा बताते हैं। उनके अनुसार **देत नाग** जिसका मन्दिर पांगी घाटी के किलाड नामक स्थान पर स्थित है, वह भी लाहुल से ही आया बताते हैं। इस कथा के अनुसार जब **नरभक्षी** केलांग देवता को लाहुल में दरिया में फैंक दिया तो इसकी मूर्ति किलाड़ में जाकर रुकी जहां से लोग उठा कर ले गए और वर्तमान मन्दिर वाले स्थान पर पहुंचाया। वहां पर यह मूर्ति जमीन पर मुंह के बल गिर पड़ी। तब वहां पर लोगों ने इस देवता के लिए मन्दिर बनाया। इसमें मूर्ति का मुख दरवाजे की ओर न रख कर भीतर की ओर रखा गया। उसी समय वहां देवदार के वृक्षों का समूह भी उग आया।

डॉ० **शशी** के अनुसार यह देवता गर्भपात भी कराता है। इसलिए गर्भवति स्त्रियां बहुत ध्यान रखती हैं कि कहीं वह हानि न पहुंचाए। इस देवता को **दरात** के रूप में पूजते हैं।[2]

इस देवता की वास्तविक शक्ति और प्रभाव इसी तथ्य से आंके जा सकती है कि आज इसके पास 376 बीघा 2 बिस्वा भूमि की जागीर है जो करमुक्त है।[3]

उपरोक्त दोनों परम्पराओं में अधिकांश तथ्य समान हैं जो यह सिद्ध करती हैं कि दोनों परम्पराओं का मूल स्रोत एक है। यही चम्बा और लाहुल के बीच उपस्थित प्राचीन काल से चले आ रहे सांस्कृतिक सम्बन्धों की एक अटूट कड़ी है। भौगोलिक रूप से लाहुल और चम्बा के बीच काफी लम्बी सांझी सीमा है। ऐसी दशा में बहुत सी बातों में दोनों में समानता और एकरूपता आवश्यक रूप से उत्पन्न हो जाती है। और ये ही सांस्कृतिक सम्बन्ध के आधार हैं।

लाहुल में भूमि का अधिकांश भाग खेती के लिए उपयुक्त नहीं है और यहां की ऊंचाई में वन भी अधिक नहीं हो सकते। इसलिए यहां बड़े-बड़े चरागाह है। लोगों ने इसलिए खूब भेड़-बकरियां पाल रखी है। परन्तु इसके अतिरिक्त भी बहुत सा क्षेत्र है जहां ग्रीष्म काल में भेड़-बकरियां चराई जा सकती हैं। इससे भी बढ़कर यहां का घास भी विशेष रूप से पौष्टिक है। इस लिए ये चरागाहें प्राचीन काल से कुल्लू, चम्बा, मण्डी, कांगड़ा आदि से गद्दी और गडरिए लोगों को आकर्षित करती रही हैं। ये लोग जून-जुलाई में अपने **माल** (अपनी भेड़-बकरियों के झुण्ड को ये माल कहते हैं) लेकर लाहुल आते हैं और बर्फ गिरने से पहले सितम्बर-अक्तूबर में वापिस चले जाते हैं।

अनेक गांवों के ऊपर एक-एक गद्दी का डेरा होता है जिसे **थाच** कहते हैं और बहुतों के थाच दूर-दूर भी होते हैं। हरेक गद्दी का गांव में अपना एक मित्र या **डो-शे** अथवा **मित्तर** होता है। इसलिए उसे हमेशा इस शब्द मित्र से ही पुकारा जाता है। इस गांव का बच्चा-बच्चा चाहे वह हिन्दी अथवा पहाड़ी का एक भी शब्द नहीं जानता है, लेकिन यह वाक्य वह अवश्य जानता है और हर गद्दी से बोलता है, जो गांव में आता है, **मित्तरा! थाच केठी?** हरेक गद्दी का

1. J.ph. Vogel : Indian Serpent Lore or the Nagas in Hindu Legend and Art.
2. S.S. Shashi : The Gaddi Tribes.
3. Thakur Sen Negi (Editor) : op. cit., p.353

अपना-अपना थाच होता है। न उसके थाच में दूसरा आता है और न ही वह दूसरे के थाच में रहने के लिए जाता है। इसलिए गद्दी को अधिकतर उसके थाच के नाम से जानते हैं, उसके व्यक्तिगत नाम से बहुत कम।

गर्मियों में जितने समय तक ये लाहुल में रहते हैं, अपने मित्र के घर उसका आना-जाना लगातार रहता है। इस सम्बन्ध का मूल आधार एक-दूसरे की आर्थिक आवश्यकता है। क्योंकि गद्दी लोग लम्बे समय के लिए अपना राशन अपने साथ नहीं ला सकते और पहले लाहुल में दुकानें नहीं थी, ये लोग अपना सारा राशन जैसे गेहूं और मक्की का आटा, चावल, दाल, नमक, तेल मसाला आदि अपने मित्र के यहां से ले जाते थे। और आज दुकानें होते हुए भी बहुत सी चीजें ऐसे ही ले जाते हैं। इसके बदले में वे घी, मांस तथा भेड़-बकरी, ऊन आदि दे जाते हैं। कभी वे कुत्ता भी ले जाते हैं और उसके बदले में वे भेड़ या बकरी दे जाते हैं। इस प्रकार का वस्तुओं का यह लेन-देन मित्रों के बीच ही होता है। मित्रों का यह रिश्ता पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता है। इस मैत्री की कहानी हमें केलांग देवता बताते हैं। केलांग देवता हमारी मैत्री बनाए रखे। 'केलांग देवता' की जय हो।

नेगी निवास संजौली,
शिमला-१७१ ००६

श्री गुरुनानक सूर्योदय जन्म साखी

● डा० मनोहर लाल

गणेश सिंह वेदी गुरु नानक का वंशज तथा बिलासपुर-राजदरबार का यशस्वी राजकवि था। वह आनन्दपुर साहिब से बिलासपुर आया था और महाराजा हीराचन्द, महाराजा अमरचन्द तथा महाराजा विजय चन्द के समय तक विद्यमान रहा। बिलासपुर राजदरबार में रहकर उसने लगभग दो दर्जन काव्यग्रंथों की रचना की थी। प्रबन्धकाव्यों तथा मुक्तककाव्यों में उसकी बहुमुखी प्रतिमा लक्षित है। प्रबन्ध-रचनाओं में विवेच्य महाकाव्य के अतिरिक्त **शशिबंश विनोद, गुरुवंश विनोद** तथा **श्रीकृष्णचन्द्र चन्द्रिका** का भी उल्लेख है।

श्री गुरु नानक सूर्योदय जन्मशाखी गणेशसिंह वेदी का प्रौढ़ काव्य है। दोहा-चौपाई शैली में रचित इस ग्रन्थ की **रामचरितमानस** के शिल्प में ढालने के सफल प्रयास के साथ-साथ कवित्त सवैया, सोरठा, निसानी, शंकर, छप्पय, पाद्धरी, रता, मोतीदास, बैत भुजंगप्रयात, श्लोक, अरिल्ल आदि दर्जनों छंदों का भी प्रयोग है। यह ग्रन्थ पंजाब में रचित गुरु विलासकाव्यपरम्परा की महत्वपूर्ण कड़ी है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में जिस तरह रामकाव्य तथा कृष्णकाव्य (इसमें भी भ्रमरगीत काव्य परम्परा विशेष रूप से) का विकास हुआ है उसी तरह पंजाब में रचित 'गुरु विलास काव्य-परम्परा' तथा गुरु **भक्ति पंचाशिका काव्य-परम्परा** को लेकर समय समय पर काव्य-ग्रन्थों का प्रणयन होता रहा। प्रथम वर्ग की रचनाएं जहां जीवनी परक होने के कारण इतिवृत्तात्मक शैली में लिखी गई हैं वहीं दूसरे वर्ग की रचनाएं मुक्तक काव्य परम्परा में यथा सम्भव प्रशस्तिमूलक हैं।

गणेश सिंह वेदी ने विवेच्य ग्रन्थ की रचना सं० 1926 वि० में की थी और यह ग्रन्थ 1956 वि॰ में प्रकाशित हुआ था। पंजाब में इस कोटि की रचनाओं को **जन्मसाखियां** नाम से जाना जाता रहा है। ये गद्य में लिखी गई और पद्य में भी। ये सिक्खों के गुरुओं के जीवनचरित को लेकर लिखी गई हैं। इस सन्दर्भ में 'पुरातनजन्मसाखी' (सं० 1747), माई पैड़ा मोखा कृत 'जन्मसाखी गुरु नानक जी की' (18वीं शती) जिसकी 11 प्रतियां अलग अलग समय पर प्रतिलिपित उपलब्ध हैं

सबसे पुरानी प्रतीत होती हैं। इसका लेखक अज्ञात है। इसी तरह 'साखीगोष्ठी मक्के की तथा 'साखी गोष्ठी मदीने की' के लेखक अज्ञात हैं। लेकिन कवि सोहन कृत **गुरबिलास** (स०1774) संतदास कृत **जनमसाखी श्री गुरु नानक शाह की** (सं० 1838), बाबा सरूपदास भल्ला कृत **श्री गुरु महिमा प्रकाश** (सं० 1857), सुखवासी कृत **गुरु नानक वंशप्रकाश** (सं० 1872), भाई संतोष सिंह कृत **श्री गुरुप्रताप सूरज ग्रन्थ** (सं० 1880), रामनारायण कृत **गुरुचन्द्रोदय कौमुदी** (सं० 1900) तथा पंडित रतनहरि कृत **श्री गुरु नानक चन्द्रिका** (सं० 1917) आदि विशेष रूप से उल्लेखय हैं।

गणेश सिंह बेदी कृत 'श्री गुरु नानक सूयर्योदय जन्मसाखी पूर्वार्द्ध तथा 'उत्तरार्द्ध' दो खण्डों में विभाजित विशाल ग्रन्थ के पूर्वार्द्ध में 65 मयूष (अध्याय) तथा 349 पृष्ठ हैं और उतरार्द्ध में 60 मयूष तथा 319 पृष्ठ हैं। ग्रन्थ का आरम्भ इस प्रकार होता है।

ऊं सतगुर प्रसाद। श्री गुरु नानक जी सहाय ॥
अथ पूर्वार्द्ध यथा। नानक सूर्य्योदयजन्मसाखी ॥

दोहा
गुरु गनपति गिरिजा गिरा, विधि हरिहर अभिबंद।
श्री नानक पावन कथा, रचत गणेश मृगेन्द ।१।

अथ श्री गणेशोपमा — सवैया

चार भुजा शशिभाल गजानन भ्रातषड़ानन को सुख भौना ।
रिद्ध औ सिद्ध तिआ संग सोहत मोहत है मन बानक लौना ॥
एक ही दंत भनै हरि शम्भुज मूषक बाहन गिरि खिलौना ।
बदन्त ता पद पंकज को हर शंकर शंकर शंकर छौना ॥१॥

इसके बाद कवि ने सरस्वती, शिव, सर्वदेव तथा गुरुवन्दना के साथ मंगलाचरण लिखकर 'कविकुल', 'नृप-वर्णन' तथा 'कवि-वर्णत' तथा 'कवि विनय' के साथ प्रथम मयूष समाप्त किया है।

ग्रन्थ के अन्त (उत्तरार्द्ध) में कवि लिखता है :

दोहा
बार-बार विनतीय है, करौं सदा कर जोर।
श्री नानक अरविन्द व्है, मलिन्द मन मोर ॥42॥

निसानी छंद
संवत उन्नी सहस पर षट बिंशति जानो।
अस्सुन सुदी दसमी भृगुवार पछानौ ॥
भयो सभापति ग्रंथ यह, मम मुक्ति सुखारा।
वाहि गुरु मुख ते भनो पावहु सुख सारा ॥43॥

दोहा
पढ़ै सुनै प्रेम के, श्री गरु-चरित जु कोय।
मन बांछित फल पावहीं, अन्य परमगति होय ॥44॥

इति श्रीमति नानक सूय्र्योदय ग्रंथ उतरार्द्धे बंदी गणेश सिंह विरचिते श्री गुरु नानक जी को सच्च खण्ड पयान वर्णनम नाम साठमो मयूषः ॥ 60 ॥

इसके बाद का जो अंश इस ग्रंथ में है वह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि इसमें कवि गणेशसिंह ने अपने कवि-कर्म तथा राजा विजयचंद के साहित्यानुराग पर टिप्पणी की गई है। यह भी बताया गया है कि मूलतः गुरुमुखी लिपि में लिखित इस ग्रंथ का घुमारवीं के मुंशी निहालसिंह ने ग्यारह महीने के श्रम से नागरी अक्षरों में उल्था करके सं० 1954 में पूर्ण किया था और सं० 1956 में इसे महाराज विजयचंद ने छपवाया था। ज्ञातव्य है महाराज विजयचंद ने गणेशसिंह के अन्यान्य ग्रंथों को भी इसी तरह छपवाकर पाठकों के लिए उपलब्ध करवाया था। कवि ने ग्रंथ के नागरी अक्षरों में छपने के संबंध में ग्रंथ के अंत में लिखा है —

कवि का उक्ति दोहा

रच्यो ग्रंथ गुरु गाथ को, पूरब ग्रंथ निहार। पढ़ै सुनै युत प्रेम के, भवनिधि उतारै पार ॥१॥
ग्रंथ छपायो प्रथम वह, हीराचंद भुआर। बरन गुरुमुखी हेतु हरि, फैलायो चक चार ॥२॥
पौत्रा हीराचंद को, अमरचंद को नंद। करत विलास बिलासपुर, अब नृप बिजै सुचंद ॥३॥
उत्तम ग्रंथ विचारि उर, बिजैचंद नरनाह। फैलायो छपवाय कैं, बरन नागरी माह ॥४॥

॥ अथ नृपोपमा वर्णनम् ॥

उपकारी सम विक्रमा, करण समान उदार। आफ़ताब इनसाफ कौ, बिजैचंद भूपार ॥५॥

॥ पुनः छप्पय ॥

चन्द्रबंश अवतंश सीस अवनीश मुकुटमनि। कमलनैन सुखदैन रूप लखि लजित मैन मन ॥
जासु प्रताप अमाप पैखि दबि जात दुअगन। हरिभक्ति अनुरक्त सेव संतन उदार मन ॥
है हार मित्र सत्रून को विजयचंद भूपार है। शम्भुज मृगिन्दजस जासु को फैल रह्यो चक चार है ॥६॥

॥ दोहा ॥

कवि गनेस सिंह की अहै. यह असीस नृपहंस। वामन कर के बंस लौं, बृद्ध होय तुव बंस ॥७॥

इसबुल् हुक्म खुदावन्द न्यामत श्रीमान् श्री महाराजा विजयचन्द साहिब बहादुर बालिये मुल्क कहलूर के कमतरीन बन्दह मुन्शी निहालसिंह मुदर्रिस कुम्हारवीं ने गुरुमुखी ग्रन्थ से नागरी अक्षरों में अज माह मघर ता माह असौज ग्यारह माह के अर्से में उलथा किया और सम्वत् 1954 आसौज गत 20 सोमवार के दिन लिखकर सम्पूर्ण किया। मि:कातिक सुदी पूर्णमासी सम्वत् 1956 को छपकर यह ग्रन्थ तैयार हुआ।

॥ इति श्री सम्पूर्णम् ॥

कवि की इस टिप्पणी से स्पष्ट होता है कि 'श्री गुरुनानक 'सूर्योदय जन्मसाखी' के नागरी अक्षरों में छपने की अवधि अर्थात् कातिक सं० 1956 वि० तक कवि बिलासपुर राजदरबार में अवश्य विद्यमान था।

यह ग्रंथ गुरु-नानक देव के जीवन काल का सम्पूर्ण लेखा-जोखा है। इसके 125 अध्यायों में गुरुनानक के जीवन की सैंकड़ों घटनाओं का सांगोपांग चित्रण है। इसे पढ़कर लगता है कवि ने बड़े श्रम, निष्ठा तथा श्रद्धा के साथ गुरु जी के जीवन के बारे में लोक में प्रचलित तथा अपने से पूर्व लिखित जन्मसाखियों का गंभीरता पूर्वक सूक्ष्म अध्ययन किया है। जिस तरह तुलसी दास ने बड़े श्रम के साथ राम कथा को काव्य की भाषा में ढाला है उसी तरह कवि गणेशसिंह ने भी यह सफल प्रयास किया है। तुलसी ने जैसे 'नाना पुराणनिगमागम ..' जैसी बात कही है उसी तरह इसने भी ग्रंथारंभ में ही 'कवि विनय' शीर्षक के अन्तर्गत साफ-साफ लिख दिया है —

निश्चय लोक प्रलोक को, वह वसीठा चीन।
कवि शंभुज हर जासु गुरु रीठा मीठा कीन॥ पू० : १/२१
तिह गुन गाथा कहन को, उपज्यो हिये उमंग।
ताते पूरब ग्रन्थ लखि, बरनत कछुक प्रसंग ॥पू० १/२२॥
छन्द रीत रस धुनी को, नाहिन कछू विचार।
जहं जहं चूक परै तहां, कविजन लेहु सुधार ॥पू० १/२३॥

और विशेष बात यह है कि यह ग्रंथ छन्दों का भी धनी है, रीति का भी इसमें खूब निर्वाह है, रस-वैविध्य भी देखते ही बनता है और शब्द-शक्तियों में ध्वनि का भी मार्मिक प्रयोग है। छंद और अलंकार पर तो कवि का अचूक अधिकार है। अपने युग में प्रचलित-अप्रचलित प्राय; सभी छंदों का प्रयोग किया है। अलंकारों में यमक, श्लेष, रूपक तथा उपमा विशेष प्रिय है। भाषा चुस्त, प्रांजल तथा भावों के भार को वहन करने में समर्थ है। अलंकार, मुहावरे-लोकोक्तियां, छंद तथा गुण आदि काव्यांगों की दृष्टि से यह ग्रंथ अपने आप में अच्छे शोध का विषय बन सकता है।

इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता तथा केन्द्रीय विचारधारा—लौकिकता में अलौकिकता की परख है। जिस तरह तुलसी दास **रामचरितमानस में स्वामी और सेवक** के संबंध को नहीं भूलते, दास्यभक्ति के महत्व का प्रतिपादन करते जाते हैं उसी तरह गणेश सिंह कवि गुरु-शिष्य संबंध को हर मयूख के आरंभ में नये अंदाज के साथ प्रस्तुत करना नहीं भूलता। वह गुरुनानक के गुरुत्व की गरिमा को आध्यात्मिक संदर्भ में स्मरण करता है। कवि ने बताया है कि गुरु सर्वोपरि है, नियामक है, नियंता है। गुरु महिमा से संबंधित कुछ काव्यांश उल्लेख्य हैं :

श्री गुरु गुन कीरति बिमल बरनत मति अनुसार।
विधि हरिहर ते अधिक, लखि शंभुज हर निरधार ॥पू० १/२७
करुनाकर भवमय हरन, मंगलमूरति मंज।
कवि गणेश हर की नमो, श्रीगणेश पद कंज ॥पू० २/१
गंगादिक सरितान ते गुरु महिमा अधिकाय।
वे परसत ये दरस ही, पातक पुंज पलाय ॥पू० ३/१
गुरु पग नख दुति इन्दु सम, जेहि उर करत निवास।

शम्भुजहर अज्ञानतम, कस नहिं होय बिनास ॥पू० ४/१
जासु नाम जपु जगत में, पापी तरे करोर।
तेहि गरुपद अरविन्द पै, होहु मधुप मन मोर ॥पू० ६/१
श्रीनानक कलहंस वर, सब सुख सम्पदा रास।
शंभुज हर उर मानसर, कीजै सदा निवास ॥पू० ९/१
कलि में कलि मखि विपिन हित, जाको पावक नाम।
तिह श्री गुरुनानक भजो, सदा सरब सुखधाम ॥पू० २४/१
सतगुरुपद अरविन्द बिनु करत मुक्ति की चाहि।
को धन धार अधार व्है चढ़ पहुच्यो दिन माहि ॥पू० ५१/१
जाकि कीरति चांदनी, तम अज्ञान निकंद।
तिहं गुरु नानकचंद के, बंदौ पद अरबिंद ॥उ० १/१
रूप अनूप बराट जिहं रविससि दृग अभिराम।
तिहं श्री गुरु अरविन्द पद् बारम्बार प्रनाम ॥उ० ११/१
जात अजात न उर गनै, केवल प्रेम प्रतीत।
तारे तुरक अपार जिहं तिहं गुरु भजु कर प्रीत ॥उ० ४०/१

कवि गणेश सिंह जब हर अध्याय के आरंभ में गुरुभक्ति में दोहा छंद लिखता है तब वह दोहा नानक-प्रशस्ति के साथ-साथ गुरुभक्ति के उच्चतम आयामों का भी स्पर्श करने लगता है। गणेशसिंह की गुरुभक्ति कबीर, रैदास, सुन्दरदास, दादू, मलूकदास, सहजोबाई तथा दयाबाई से कहीं भी तो न्यून नहीं पड़ती।

संक्षेप में, श्री गुरुनानक सूर्योदय अपने आप में गम्भीर सागर है। ऐसा सागर जिसमें साहित्यिक मूल्य के अनेक रत्न भरे पड़े हैं। यह अकेला ग्रंथ इतना समर्थ है कि इस पर उच्चकोटि के शोध ग्रंथ लिखे जा सकते हैं।

१०८५३, गली न० ४,
सुभाष पार्क, शाहदरा
दिल्ली-११००३२

व्यक्तित्व

स्व० जयदेव बड़ोत्रा : एक श्रद्धांजलि

●हरि प्रसाद 'सुमन'

चला जाऊंगा जब मैं छोड़कर इस आशियाने को,
वफाएं याद तब आएंगी मेरी इस जमाने को।

देवभूमि हिमाचल प्रदेश त्रिकालदर्शी ऋषियों, महान चिन्तक मुनियों, और तत्ववेता चिन्तकों, यशस्वी कवियों की क्रीड़ा स्थली रही है। इसी पावन भूमि के जिला चम्बा में एक ऐसे प्रतिभाशाली यशस्वी सन्त ने जन्म लिया जिसने थोड़े से समय में ही अपनी प्रतिभा, विद्वता, सरलता, सौम्यता कला, संगीत-प्रियता आदि गुणों से जनमन को विजित कर लिया था। इस महान विभूति का नाम था जयदेव बड़ोत्रा।

श्री जयदेव बडोत्रा का जन्म चम्बा नगर में सुप्रसिद्ध बड़ोत्रा वंश में 31 अक्तूबर 1910 में श्री कर्म सिंह बड़ोत्रा के घर पर हुआ। जो उस समय चम्बा में न्यायधीश के पद पर आसीन थे। बड़ोत्रा वंश चम्बा के इतिहास में अपनी राजभक्ति, राजनीति, और प्रशासन कुशलता के लिए आरम्भ से ही प्रसिद्ध रहा है। सुप्रसिद्ध बाघा वजीर तथा तत्थु वजीर इसी वंश में उत्पन्न हुए थे। श्रीकण्ठ कप्तान भी इसी वंश के थे। ठाकुर कर्म सिंह के चार पुत्र व दो पुत्रियां उत्पन्न हुईं। सबसे बड़े पुत्र हरदेव बड़ोत्रा, उससे छोटे हमारे चरित्रनायक श्री जयदेव बड़ोत्रा, उससे छोटे श्री चतुर सिंह बड़ोत्रा और सबसे छोटे श्री शक्ति प्रसाद बडोत्रा। ठाकुर जी ने चारों पुत्रों को उच्च शिक्षा दिलाई। शिक्षा के साथ साथ उन्हें कला, संगीत, फोटोग्राफी, कृषि आदि में भी प्रशिक्षित करवाया।

स्वर्गीय जयदेव जी की प्रारम्भिक शिक्षा स्टेट हाई स्कूल चम्बा में हुई। आपने 1929 ई० में इसी स्कूल से मैट्रिक परीक्षा पास की। 1930 में आप उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए लाहौर चले गए। 1933 में पंजाब विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में बी०ए० पास करके स्वर्ण पदक भी

प्राप्त किया और पंजाब विश्व विद्यालय से छात्रवृत्ति भी प्राप्त की। 1936 में प्रथम श्रेणी में संस्कृत एम०ए० करके फिर छात्रवृत्ति प्राप्त की। कॉलेज पत्रिका के आप सम्पादक भी रहे। एम०ए० करने के पश्चात आप चम्बा आ गये।

उन दिनों चम्बा में मैट्रिक से आगे पढ़ने वालों को नौकरी नहीं दी जाती थी। अत: जयदेव जी भी शिक्षित बेकारों में सम्मिलित हो गये। इनके छोटे भाई चतुर सिंह बड़ोत्रा भी बी०एम०सी० करके व स्वर्ण पदक लेकर बेकार रहे। किन्तु होनहार बिरवान के होते चिकने पात। जयदेव जी ने अपने साथियों के साथ मिलकर अनेक धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक संस्थाओं का गठन करके अपनी गतिविधियां आरम्भ कर दी। आपने सनातन धर्म सभा के अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाकर उसके आधीन सनातन धर्म पुस्तकालय, विद्यालय, एवं वाचनालय स्थापित किए। धर्मरक्षा दल नाम से युवकों का संगठन बनाकर असहाय लोगों की सहायता व सेवा कार्य शुरु कर दिया। जयदेव जी द्वारा स्थापित पुस्तकालय जिला भर में एकमात्र सार्वजनिक पुस्तकालय तथा वाचनालय था। इसके बाद सनातन धर्म नाटक मण्डल नाम से नाटक संस्था की स्थापना की जिसके लिए प्रतिवर्ष स्वयं नाटक लिखते, उनका निर्देशन करते तथा फिर उन्हें मंचित करवाते। उनके मंचित नाटकों में सती सावित्री, ऊषा अनिरुद्ध, कुमार सम्भव, शकुन्तला, भक्त ध्रुव, गोपाल भैया आदि प्रमुख है। ये सभी नाटक तत्कालीन थियटरों की समता करते थे और एक एक मास तक टिकटों पर मंचित होते थे। श्री जयदेव साहित्य, संगीत, कला तीनों के प्रकाण्ड पण्डित थे। आप हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी व संस्कृत चारों भाषाओं के भी पूर्ण ज्ञाता थे। सनातन धर्म विद्यालय के आप शिक्षा निदेशक रहे। आपके ही प्रयत्नों से सनातन धर्म विद्यालय में पंजाब विश्वविद्यालय की हिन्दी की रत्न, भूषण, प्रभाकर तथा संस्कृत की प्राज्ञ, विशारद, शास्त्री कक्षाएं प्रारम्भ हुई। अपने नाटकों के अतिरिक्त अपने अनेक संस्कृत स्तोत्रों, की रचना की। जिनमें गुरु स्तोत्र, नवदुर्गा स्तोत्र, सूर्याष्टक, शिव स्तोत्र, हनुमद दशक, भगवती स्तोत्र, श्री कृष्ण ताण्डव त्रयोदशी आदि प्रसिद्ध हैं।

इसके अरिरिक्त आपने संस्कृत-अंग्रेजी में पद्यमय कृष्ण सुदामा चरित काव्य भी लिखा। केवल 70 श्लोकों में दुर्गा शप्तशती का अंग्रेजी में पद्यानुवाद किया। सूही मेले पर आधारित संस्कृत में बलिदान नाटक की रचना की। इसी पर बलिदान काव्य लिखा जो संस्कृत हिन्दी व अंग्रेजी तीनों भाषाओं में है।

धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक गतिविधियों के साथ साथ जयदेव जी की राजनैतिक गतिविधियों में भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। शिक्षा तथा विकास विरोधी राज्य सत्ता को उखाड़ने के लिए चम्बा सेवक संघ के भी आप सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे। उच्च ब्रिटिश अधिकारियों को चम्बा निवासियों की ओर से जो ज्ञापन दिये गये उनमें पं० विद्यासागर शर्मा, श्री दौलत राम गुप्त के साथ तीसरे आप ही थे। ऐसे ज्ञापनों के प्रारूपकार भी आप ही होते थे। आपके ही प्रयत्नों से जब चम्बा राज्य से दीवानशाही समाप्त हुई तो सत्ता परिवर्तन होने पर आपको स्टेट हाई स्कूल चम्बा में

शिक्षक के पद पर नियुक्त किया गया। आपके सहयोगी पं० विद्यासागर न्यायधीश नियुक्त हुए शिक्षक बनने के बाद आपने बी०टी० का प्रशिक्षण भी प्राप्त किया। कई वर्षों तक आप सनातन धर्म विद्यालय में निशुल्क प्राज्ञ, विशारद् तथा शास्त्री के छात्रों को काव्य, नाटक तथा साहित्य का अध्ययन कराते रहे।

चम्बा निवासियों को आपसे बहुत आशाएं थी किन्तु दुर्भाग्यवश 36 वर्ष की अल्पायु में ही आप इस नश्वर संसार को शोक सन्तप्त छोड़कर चले गए।

बड़े शौक से सुन रहा था जमाना, तुम्हीं सो गए दास्तां कहते कहते।

सुमन कुटीर,
मुहल्ला हटनाला,
चम्बा (हि०प्र०)

विवाह लोकगीत

●जगदीश चन्देल

किसी भी प्रदेश के लोक-गीत उस प्रदेश की आत्मा होती है लोकगीतों के बीच लोगों के सच्चे भाव और विचार नजर आते हैं। लोक-गीतों में वहां की सभ्यता और संस्कृति की झाँकी नजर आती हैं लोकगीत लोगों के बहुत पुराने प्यार के स्त्रोत हैं।

इस प्रकार लोकगीत कई प्रकार के होते हैं और हमारे हिमाचल के अन्दर हर जिले के अलग-अलग लोकगीत अलग-अलग ढंग से और अलग-अलग राग से गाये जाते हैं। परन्तु इन सबमें बिलासपुर जिले के लोकगीतों का अपना विशेष महत्त्व तथा स्थान है।

ऐसे तो बिलासपुर में गंगी, यज्ञ आदि में गाये जाने वाले लोकगीत अलग अलग होते हैं परन्तु इन सब में विशेष महत्व विवाह के लोकगीतों का है।

बिलासपुर में लड़के के विवाह से पांच सात दिन पहले गाना बजाना शुरू हो जाता है उसको बिलासपुर जनपद में समूत कहते हैं। गांव की सारी औरतें और मर्द शादी वालों के घर में काम हेतु इकट्ठे हो जाते है।

जिस ढंग से वर वधू के विचार शादी में होते हैं उन विचारों के आधार पर ही यह लोक-गीत गाये जाते हैं। कुछ लोकगीतों का विवरण निम्नलिखित प्रकार से है।

जब लड़के को बटना लगाकर बाहर नहाने को ले जाते हैं तो उस समय तेल और दही की जरूरत पड़ती है। क्योंकि दही और तेल के साथ दुल्हे को स्नान कराया जाता है। उस समय औरतें गानाशुरू करती हैं।

गड़ गडेरे दी गुजरी बाँहिये बेचदी आई।
बाहरे तूँ आया लाड़े दिये अम्मा दहिये वा

मोल करायां दही ता गुजरा महंगा, क्या
मोल करना तेरे दहीं दा थोड़ा जेया दही मैं
इह्यां ही देई देंगी मुंडुश्रो जो नहान साजो।
गड़ गड़ेरे दी तेलन तेले वो बेचदी श्राई।
बाहरे तूं श्रांया लाड़े दिये ताईये तेल दा मोल कराया।
तेल तां तौ तेलन महंगा जे लाया. क्या मोल करना तेरे तेले दा।
थोड़ा तां तेल मैं इह्यां ही देई देगी मुडुये जो नहान सजो।

हे दुल्हे की श्रम्मा श्रौर ताई दुल्हे के नहाने के लिए तेल श्रौर दही ले लो, क्योंकि बाहर गुजरी श्रौर तेलन श्राई हुई है। तेल श्रौर दही श्रापने बहुत मंहगा लगाया है तो श्रापके साथ क्या मोल करना है। तब वह दोनों तेलन तथा गुजरी कहती हैं कि हम थोड़ा थोड़ा तेल तथा दही ऐसे ही दे देंगी श्राप दुल्हे को स्नान करवायें।

दुल्हे के नहाने से श्रांगन में पानी गिर जाता है श्रौर कीचड़ हो जाता है तब,

श्रंगना चिकड़ किनै किया वो किनै डोलया पाणी
श्रंगना चिकड़ लाड़े क्रिया वो भोइये डोलया पाणी

नहाते समय श्रौरतें पूछती हैं कि श्रांगन में यह कीचड़ हुश्रा है यह किसने किया है श्रौर यह पानी किसने गिराया है। श्रांगन में किचड़ हुश्रा है यह दुल्हे के नहाने से हुश्रा है तथा उसकी बहिन ने यह पानी गिराया है।

इस तरह दुल्हा नहाकर श्रन्दर चला जाता है श्रौर चार पांच दिन तक इस तरह के गाने बजाने चलते हैं, फिर शादी के एक दिन पहले सारे रिश्तेदार श्रा जाते हैं श्रौर उस दिन लड़के की सांद होती है। शाम को सांद के समय लड़के को तेल ड़ालने लगते हैं उस समय श्रौरतें गाना शुरू करती हैं:

छणकयां सोन कटोरड़िये तेले नो पर तेले नो।
पहला तेल संजोया लाडेया क्वारी कन्या ने
दूजातेल संजोया लाड़ेया तेरी श्रम्मा बाबे ने पर बाबे ने।
तीया तेल संजोया लाड़ेया तेरे मामा मामियां ने पर मामिये ने
चौथा तेल संजोया लाड़ेया सारे गांव कनै पर गांव कनै।
छणकया सोन कटोरड़िये पर तेले नो पर तेले नो।

तेल की कटोरी में तेल ड़ालने के लिए पुकारते है श्रौर सबसे पहले क्वारी लड़की तेल ड़ालती है श्रौर उसके बाद माता पिता श्रौर मामा मामियां तेल डालती हैं श्रौर फिर सारे गांव वाले बारी-

बारी तेल डालते हैं। दूसरे दिन फिर बारात भेजने की तैयारी की जाती है और मामे के लाये कपड़े पहनाये जाते हैं। तब भाई अपनी बहिन को अपने घर से लाये कपड़े देने लगता है।

इक पहनाया वो भाईया सने टबरे नहीं तो रह यां वो भाईया घर अपने,
इक पहनांगा वो बहन बहनोई जो नहीं ता रहंगा वो बहन घर अपने।

भाई साहिब एक तो सारे परिवार वालों को कपड़े पहनाना नहीं तो अपने घर में ही रहना। भाई कहता है कि मैं केवल बहन और बहनोई को ही कपड़े पहनाऊंगा।

कपड़े पहनाने के बाद दुल्हे के बाल काटे जाते है और आंखों में काजल लगाया जाता है। बहिन भाई के काटे बालो को अपने दुपटे के बीच लेती है और नीचे नहीं गिरने देती तब :

मेरे लाड़लया भाईया नाइये काटी ले तेरे बाल,
बाला काटन दे बहने पलूये आगे कर नी बहने।

बहन भाई को कहती है कि भाई जी नाई ने आपके बाल काट लिए है तब भाई कहता है कि बहन बालों को काटने दे तूं अपना दुपटा आगे कर और बालो को थाम ले।

आंखी फिचड़ियां देवरा काजल कियां लाना देवरा।
आंखी साफ करले भाभो काजल जरूर लगाना वो।

देवर जी आपकी आंखे ऐसी हैं कि इनमें काजल कैसे लगाना है। दुल्हा भाभी को कहता है कि भाभी जी मेरी आंखों को साफ कर ले और काजल लगा दे।

इस तरह दुल्हे को तैयार कर दिया जाता है और बारात जाने से पहले और औरतें बारात जाने वाले लोग खाना खाने बैठते हैं। ताकि खाना खाकर औरतें बारात का तमाशा देखें और बराती खाकर जायें। औरतें खाना खाने बैठती हैं परन्तु बोटी (खाना बांटने वाला) देर से आता है। तब,

भत्त बन्डदया जी बोटिया तैं क्या बेर लाई वे।
बेर ता लाई तूसी लोकनीये मूईयां कानी बहिदयां।
शिमले ते सतंरज मंगाई लै दिया टोके न सहदियां।
भत्त बडंदयां जी बोटिय; तैं क्या बेर लाई जी।
बेर ता लाई तूसो लोकनीये पत्तल क्यों नी लैंदियां।
जगाधरी से थाल मंगाई लैंदिया टोके न सैहदियां।

यानी कि हे खाना बाटने वाले आपने खाना देने में इतनी देर क्यों लगा दी है तब बोटी कहता है कि देर तो आपने लगाई जो आप नीचे नहीं बैठ सकती और पत्तल (जिसमें चावल खाने को

दिये जाते हैं) नहीं लेती। बोटी की बात सुनकर और उसको बुरा समझकर सतरंज पर बैठती हैं और थाली में खाना मांगती है। इनके बाद बारात चलना शुरु हो जाती है तब

जुये दीया खेला जाना सरमें देखया मारदा।
भाईयां तेरयां कनै जाना सरमें देखया मारदा।
बाबे तेरे कनै जाना सरमें देखया मारदा।
लाड़ेया सौरियांदे देशा जाना सर में देखया मारदा।

दुल्हे की ओर संकेत करती हुई औरतें कहती हैं कि हे दुल्हे आपने एक किस्म के जुये की खेल के लिये जाना है वहां जा कर आप ठीक प्रकार से रहना ताकि आपके सगे सम्बन्धियों को कोई ठेस न पहुंचे।

इसके बाद दुल्हे को ससुर के घर जाकर खूब गालियां गाई जाती हैं और दुल्हा दूसरे दिन दुल्हन के साथ वापिस अपने घर आता है। बारात को घर के पास आते देखकर औरतें गाना शुरु करती है।

झलमल झलमल पालकीये वो, सीया ब्याही घर लाया।
अपनियां अम्मा दा पुत लाड़ला बो सिया ब्याहीं घर लाया।
झलमल पालकीये वो सिया ब्याही घर लाया।
अपनिया ताईया दा पुत्त लाडला बो सिया ब्याही घर लाया।

अपनी ताई और माता का लाड़ला पुत्र आज चमकती हुई पालकी के साथ दुल्हन को बयाह करके ले आया है इसके बाद दुल्हन को अन्दर ले जाने के लिये उसकी सास आती है और बहू को पालकी में से निकाल कर अन्दर ले जाने लगती है तब,

कालिये कोयले बोल, होइ गईरा सबेरा।
अन्दरे आओ बहुये अन्दरे आओ यह घर तेरा।

काली कोयले तू क्यों नहीं बोल रही अब तो सबेरा हो गया है, मेरी बहू आप अन्दर जलो अब यह घर आपका ही है। इस तरह बहू अन्दर आ जाती है और अन्दर बैठ जाती है। तब मजाक के रुप में औरतें गाती हैं।

लाड़िये तू आई तेरी अम्मां कानी आई।
तिसा कियां आना था सांझा जम्मी री मुन्नी।
से ले आनी थी असैं दे देंदे सुडी री पुड़ी।
लाड़िये तू आई तेरी चाची कानी आई।

तीसा कियां आना था सांझा जम्मी री मुन्नी ।
से ले आनी थी बैंदे सुंडी री पुड़ी ।

बहू जी आप अकेले ही आ गये आपने अपनी मां और चाची मां ले आनी थी । बहू कहती है कि उन्होंने कैसे आना था, उनके दोनों के शाम को लड़कियां हुई हैं तब कहती हैं कि वह ले आनी थी हम उन्हे दवाई दे देती ।

बहु केड़ी वो केड़ी सहारे मुंडे ते भी बड़ी
बहुये बंगा न छाणकांयां महारे मुंडे जो न डरायां
बहुये पत पई पतीस म्हारे मुन्डे री क्या रीस ।

बहू को देखकर कहती है कि बहू हमारे लड़के से भी लम्बी है और बहू आप अपनी चूड़ियां की आवाज न करो हमारे लड़के को न डराओ । बहूजी आप हमारे लड़के का क्या मुकाबला कर सकती हो ।

इसके बाद पीपल के पूजने का समय हो जाता है और गांव वाले नई बहू के साथ पीपल पूजने के लिए जाते हैं. तब वहां जाकर पंडित जी हवन करना शुरु करता है । तब

पीपल और गरने (कांटेदर झाड़ी) की लकड़ियां आप यहां किसलिये आई हो, अपने यजमानों के घर हमने कारज सुना था उसको सुनकर हम आई है । अर्थात राजपूत और ब्राह्मण शादी में हवन के लिये पीपल की लकड़ी जलाते हैं और नाई/कोली गरने की लकड़ी जलाते हैं ।

इसके बाद शाम के समय बहू को वापिस उसके मां बाप के घर भेज दिया जाता है और बाकि रिश्तेदार भी जाना शुरु कर देते हैं और लड़के के ननिहाल वाले भी चलते हैं तब औरतें गाना शुरु करती हैं ।

तोता बैठे वो बहने अम्बे वो डालिय मैंने लाई लम्बी डारी,
फेरी भी करया वो बहने कारज उसे गांगे फेरी जरुर वो ।

तोता बैठया वो बहने अम्बे वो डालिया मैंने लाई लम्बी डारी वो बहिन जब अपने भाई को घर से कुछ दूर तक छोड़ने जाती है तो भाई बहन को कहती है आप अपने घर जाओ और अब हम घर जाते हैं ।

जब बहिन अब दोबारा आपके घर मे कारज होगा तब हम दोबारा आयेंगे ।

इस तरह शादी उचित वातावरण में गानों की आहट के आदान प्रदान में सम्पन्न हो जाती है ।

हिमाचल राजकीय संग्रहालय
शिमला-4

ऐतिहासिक व्यक्तित्व

लोक गाथाओं में—गूगाछत्री

● कु० स्वर्ण कान्ता शर्मा

हिमाचल में अनेक देवी देवताओं की पूजा की जाती है। उनमें से कुछ व्यक्तित्व ऐसे भी हैं जिनके चमत्कारिक कृत्यों के कारण श्रद्धा वश या आतंकित होकर ईश्वरीय रूप देकर प्रतिष्ठापित कर दिया गया और इस प्रकार ऐतिहासिक व्यक्तित्व भी ईश्वरीय रूप में पूजक हो गए। इन में अधिकतर पराक्रमी राजा या साधु सन्त ही हैं। बाबा बालक नाथ, भर्तृहरि, गूगाछत्री, गुरु गोरखनाथ इत्यादि की पूजा। इन देवताओं में कुछ की जीवन-गाथा लोक कथाओं (किंवदन्तियों) में प्रचलित हैं और कुछ की लोक गाथाओं में एक पीढ़ी से दूसरी तक चली आती हैं।

गूगाछत्री की स्थापना कांगड़ा विशेषतया तहसील देहरा के तो प्रत्येक गांव में की गई है। गूगा को सांप के जहर से निवारण और जादू-टोने और ओपरी का छुटकारा दिलाने वाला देवता माना जाता है। ऐसा लोक विश्वास है कि सांप के काटे व्यक्ति को अगर गूगा की स्थापना वाले स्थान पर पहुंचा दिया जाए तो विष प्रभावहीन हो जाता है। स्थापना के स्थान की मिट्टी काटे स्थान पर लगाई और खिलाई जाती है। पानी (गूगा के जल) के नाम से पीने को दिया जाता है। जादू और भूत प्रेत के निवारण के लिए गूगा का जल पिलाकर उल्टियां करवाई जाती हैं और पीड़ित लोगों को धूप की गन्ध से खेल आती है और स्वयं खेल में सब बता देते हैं। ऐसा विश्वास है कि बार-बार उस स्थापना पर जाने पर पीड़ित व्यक्ति ठीक हो जाता है।

वर्ष में **'गूगा नौमी'** वाले दिन गूगा के स्थापना स्थलों में रात भर (गूगा की बारें) गाकर स्तुति चलती है और अगले दिन दसमी को प्रायः यज्ञ किया जाता है। गूगा की स्थापना पत्थर (सप्पड़) का घोड़ा और उस पर सवार बनाकर घर के कमरे की तरह कमरा बना कर दी जाती है। कई स्थानों पर खुले में किसी वृक्ष इत्यादि के नीचे तीन घुड़-सवार स्थापित किए होते हैं। यह अधिक भी हो सकते हैं। रक्षा बन्धन की पूर्णिमा से नवमी तक नौ दिन गूगा के पुजारी, गूगा की लोक गाथा गा कर घर-घर जा कर अन्न और गुड़, डोरी पैसे श्रद्धानुसार लोगों द्वारा दी गई

सामग्री एकत्रित करते हैं। उसी में और डाल कर दसमी वाले दिन यज्ञ किया जाता है। टोली में ये लोग स्थानीय वाद्य-यन्त्रों के साथ जिनमें ढोलक, थाली चिमटा होते हैं, बजाकर गूगा की वारें गाते हैं। एक व्यक्ति पत्तों से बना 'छतोड़' जिसे गूगा का छत्र के प्रतीक कहते हैं बीच से एक डण्डे से बांध कर उठाया होता है। उसे जमीन पर नहीं रखा जाता। अन्दर की तरफ लोगों की दी हुई कपड़ा, डोरी बांध कर लटकाई होती है। नवमीं वाले दिन प्रत्येक परिवार में 'गूगा नौमी' के रोट देने की प्रथा है। इन्हें पकाने के लिए तीन-चार आस पास के परिवारों से आटा मांगा जाता है।

'गूगा नौमी के जन्म निवास और परम्परा के वर्णन के साथ उन 'गूगा की वारों' को विवेचनात्मक दृष्टि से देखा-परखा जाए तो एक ऐतिहासिक राजा और महत्वपूर्ण सामाजिक व्यक्ति की जीवनी स्पष्ट देखने को मिलती है। जो लोक गाथा मैंने अगर चन्द डूमणा से लिखी है, उसके अनुसार गूगा के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कहानी वर्णित मिलती है।

गूगा के जन्म के विषय में यह विश्वास है कि गुरु गोरख नाथ के आर्शीवाद से गूगा का जन्म हुआ था और उसी के आर्शीवाद से रानी कांच्छालां के घर जुड़वां बेटे हुए थे। यह आर्शीवाद कांच्छालां ने गुरु से धोखे से प्राप्त कर लिया था। उनकी घोड़ी के यहां भी नीले घोड़े ने जन्म लिया था जो जीवन पर्यन्त गूगा के साथ रहा। इसीलिए गूगा की स्थापना घोड़े पर सवार बना कर की जाती है।

जन्म लोक गीत में गुरु के आर्शीवाद और दाई, कुम्हारी, नैन, झीर, ब्राह्मण के नाम दिए हैं। डूमणों को बुला कर घर-घर बधाई गाने को कहने से एक और परम्परा स्पष्ट होती है कि उस समय राजकुमारों के जन्म पर घर-घर गा कर खुशियां मनाने की प्रथा थी। जन्म की कथा लोक गाथा में यों है:

काले दे सिर धौले आये केसां रंग बदलाये, ओतरां दे घर पुत्तर जी दियां न उजाड़ियानू फेर बसा जी,
सद्द बुलाइयां जिसा अग्नियां दाईया जो राणे ने जन्म लैणा जी।

सद्द बुलाईयो शरिया कुम्हारिया, कोरी कनाली मंगाणी जी,
सद्द बुलाईयो जिसा सन्तीया नैणी, मोतिया चौंका पाणा जी।
सद्द बुलाइयो जिस कालूये झीरे, गूगा नीर मंगाणा जी,
सद्द बुलाइयो जिन्हा भट्टा दिया डूमा जो घर-घर माठया बजाणा जी।
सद्द बुलाइयो जिस रती चंदे बाह्मणे, राणे दी रास गणाणी जी,
सद्द बुलाइयो मेरियां सठ्ठ सहेलियां, रली-मिली मंगल गाणा जी।
ठंडा पाणी गर्म कराणा, राणा तुरंत नुआणा जी,
नौता-धोता राणा पट्टल लपेटिया, कुच्छड़ दाईया दे देणा जी।

ऐतिहासिक व्यक्तित्व

लोक गाथाओं में—गूगाछत्री

● कु० स्वर्ण कान्ता शर्मा

हिमाचल में अनेक देवी देवताओं की पूजा की जाती है। उनमें से कुछ व्यक्तित्व ऐसे भी हैं जिनके चमत्कारिक कृत्यों के कारण श्रद्धा वश या आतंकित होकर ईश्वरीय रूप देकर प्रतिष्ठापित कर दिया गया और इस प्रकार ऐतिहासिक व्यक्तित्व भी ईश्वरीय रूप मे पूजक हो गए। इन में अधिकतर पराक्रमी राजा या साधु सन्त ही हैं। बाबा बालक नाथ, भर्तृहरि, गूगाछत्री, गुरु गोरखनाथ इत्यादि की पूजा। इन देवताओं में कुछ की जीवन-गाथा लोक कथाओं (किंवदन्तियो) में प्रचलित हैं और कुछ की लोक गाथाओं में एक पीढ़ी से दूसरी तक चली आती हैं।

गूगाछत्री की स्थापना कांगड़ा विशेषतया तहसील देहरा के तो प्रत्येक गांव में की गई है। गूगा को सांप के जहर से निवारण और जादू-टोने और ओपरी का छुटकारा दिलाने वाला देवता माना जाता है। ऐसा लोक विश्वास है कि सांप के काटे व्यक्ति को अगर गूगा की स्थापना वाले स्थान पर पहुंचा दिया जाए तो विष प्रभावहीन हो जाता है। स्थापना के स्थान की मिट्टी काटे स्थान पर लगाई और खिलाई जाती है। पानी (गूगा के जल) के नाम से पीने को दिया जाता है। जादू और भूत प्रेत के निवारण के लिए गूगा का जल पिलाकर उल्टियां करवाई जाती हैं और पीड़ित लोगों को धूप की गन्ध से खेल आती है और स्वयं खेल में सब बता देते हैं। ऐसा विश्वास है कि बार-बार उस स्थापना पर जाने पर पीड़ित व्यक्ति ठीक हो जाता है।

वर्ष में 'गूगा नौमी' वाले दिन गूगा के स्थापना स्थलों में रात भर (गूगा की बारें) गाकर स्तुति चलती है और अगले दिन दसमी को प्रायः यज्ञ किया जाता है। गूगा की स्थापना पत्थर (सप्पड़) का घोड़ा और उस पर सवार बनाकर घर के कमरे की तरह कमरा बना कर दी जाती है। कई स्थानों पर खुले में किसी वृक्ष इत्यादि के नीचे तीन घुड़-सवार स्थापित किए होते हैं। यह अधिक भी हो सकते हैं। रक्षा बन्धन की पूर्णिमा से नवमी तक नौ दिन गूगा के पुजारी, गूगा की लोक गाथा गा कर घर-घर जा कर अन्न और गुड़, डोरी पैसे श्रद्धानुसार लोगों द्वारा दी गई

सामग्री एकत्रित करते हैं। उसी में और डाल कर दसमी वाले दिन यज्ञ किया जाता है। टोली में ये लोग स्थानीय वाद्य-यन्त्रों के साथ जिनमें ढोलक, थाली चिमटा होते हैं, बजाकर गूगा की बारें गाते हैं। एक व्यक्ति पत्तों से बना 'छतोड़' जिसे गूगा का छत्र के प्रतीक कहते हैं बीच से एक डण्डे से बांध कर उठाया होता है। उसे जमीन पर नहीं रखा जाता। अन्दर की तरफ लोगों का दी हुई कपड़ा, डोरी बांध कर लटकाई होती है। नवमीं वाले दिन प्रत्येक परिवार में 'गूगा नौमी' के रोट देने की प्रथा है। इन्हें पकाने के लिए तीन-चार आस पास के परिवारों से आटा मांगा जाता है।

'गूगा नौमी के जन्म निवास और परम्परा के वर्णन के साथ उन 'गूगा की बारों' को विवेचनात्मक दृष्टि से देखा-परखा जाए तो एक ऐतिहासिक राजा और महत्वपूर्ण सामाजिक व्यक्ति की जीवनी स्पष्ट देखने को मिलती है। जो लोक गाथा मैंने अगर चन्द डूमणा से लिखी है, उसके अनुसार गूगा के जन्म से लेकर मृत्यु तक की कहानी वर्णित मिलती है।

गूगा के जन्म के विषय में यह विश्वास है कि गुरु गोरख नाथ के आर्शीवाद से गूगा का जन्म हुआ था और उसी के आर्शीवाद से रानी कांच्छालां के घर जुड़वां बेटे हुए थे। यह आर्शीवाद कांच्छालां ने गुरु से धोखे से प्राप्त कर लिया था। उनकी घोड़ी के यहां भी नीले घोड़े ने जन्म लिया था जो जीवन पर्यन्त गूगा के साथ रहा। इसीलिए गूगा की स्थापना घोड़े पर सवार बना कर की जाती है।

जन्म लोक गीत में गुरु के आर्शीवाद और दाई, कुम्हारी, नैन, झीर, ब्राह्मण के नाम दिए हैं। डूमणों को बुला कर घर-घर बधाई गाने को कहने से एक और परम्परा स्पष्ट होती है कि उस समय राजकुमारों के जन्म पर घर-घर गा कर खुशियां मनाने की प्रथा थी। जन्म की कथा लोक गाथा में यों है :

काले दे सिर धौले आये केसां रंग बदलाये, औतरां दे घर पुत्तर जी दियां न उजाड़ियानू फेर बसा जी,
सद्द बुलाइयां जिसा अन्नियां दाईया जो राणे ने जन्म लैणा जी।

सद्द बुलाईयो शरिया कुम्हारिया, कोरी कनाली मंगाणी जी,
सद्द बुलाईयो जिसा सन्तीया नैणी, मोतिया चौंका पाणा जी।
सद्द बुलाइयो जिस कालूये झीरे, गूगा नीर मंगाणा जी,
सद्द बुलाइयो जिन्हा भट्टा दिया डूमा जो घर-घर माठया बजाणा जी।
सद्द बुलाइयो जिस रती चंदे बाह्मणे, राणे दी रास गणाणी जी,
सद्द बुलाइयो मेरियां सठ्ठ सहेलियां, रली-मिली मंगल गाणा जी।
ठंडा पाणी गर्म कराणा, राणा तुरंत नुआणा जी,
नौता-धोता राणा पट्टल लपेटिया, कुच्छड़ दाईया दे देणा जी।

सोने दा मशूंड', रेशमी डोरां, भूटे दिदी अन्नी दाई जी,
अन्नी-अन्नी दाई तिजो भूटे दिदी, अक्खी च जोत सुआई जी।
लोरी लिआं बालकां, लोरी लिया याणियां, लोरी लिआं राजा चुआना,
अन्दर संगारिया राणा गूगा मल, बाहर संगारिया नीला माई।

दूसरे गीत में कांच्छला के जुड़वां बेटे होते ही माता पिता की मृत्यु दर्शाई गई है जिन्हें कांच्छला गूगा की मां द्वारा ही पाला जाता है। जिनके नाम अर्जुन-सुरजन थे। परन्तु जुड़वां बच्चों को पालना कांच्छला की भूल बताई गई है :

यथा : निरमल पेटें बाबुल खादा, जमदिया माई,
खबरा होइयां भोलिया बाशला जे जोड़े ले मंगाई।
मंदा कीता तू भोलिये बाशले, तैं सपा पटारिया ले पाई,
खत्वे चीन्धुये दोनों जौड़े पाले, सज्जे पालिया गूगा भाई।

गूगा चौहान की सगाई की लोक गाथा में गूगा के घर, वंशावली और ससुराल का पूरा वर्णन है :

सिंह जी दे घर कन्या कुआरी मारु जोता जगिया न,
मारुये जोता जगिया जी ओ—
सिंह जी दे घर कन्या जन्मी गौड़ बंगाले में,
लड़की दा करना साख जी ओ हुक्म जी कीता सिंह जी राणे पंडित बुलाया न
लड़की दा करना साख जी ओ खोलके भेद देखन लग्गा सुन लैं स्वामी पंडता न,
देखयां मन-चित लाई जी ओ—
खोल के वेद देखन लग्गा सुण लैं सिंह जी राणिया न,
देखया मन-चित लाई जी ओ—
चार ता वेद टोली मैं सुट्टे, सुण लैं सिंह जी राणिया न,
जुड़दा न लड़की दा साख जी ओ —
मारु देस गूगा रजादा सुण लैं सिंह जी राणिया न,
जुड़दा जी लड़की दा साख जी हो—
किदा ए बेटा जी केहिये, कीदा पोता न,
क्या की ओदी जात जी हो—
सेमल दा बेटा, जयमल दा पोता न, गूगा चौहान जात जी ओ—
पंज रुपइये इक दुशाला सुण लैं स्वामी पंडता न टीका मारुए लेई जा जी ओ —

इस तां वेला जाणा है नी सुण लै सिह जी राणिया न
ना इ गलाइयां जी श्रो—
एहो खाणियां सासण माटियां सुण लै स्वामी पडता न,
टीका मारुये लेई जा जी श्रो—
सत्त समुद्र, सत्त न नदिया कुहण लंगावे न,
कौण लंघावे जी श्रो—
चोई तां खानिया दा कुड़ा बणाई लै सुण लै स्वामीपंडता न, टीका मारुये ले जा जी श्रो
बारह महीनियां दा खर्च तू देई दे सुण लै सिह जी राणिया न,
टीका मारुये नीणा जी श्रो—
खोल भंडार खर्च तू ले लै, सुण तू स्वामी पंडता न,
टीका मारुये ले जा जी श्रो—
चल्या जी चल्या स्वामी पंडित, पंडित चलया न,
गिश्रा मारुये राह जी श्रो—
चल्या जी चल्या स्वामी पंडित, पंडित चलया न,
जाई पुज्जा समुन्द्र पास जी श्रो—
जाके उदेश ख्वाजे नू कहदा सुणलै ख्वाजा न
मैनू टपायां पार जी श्रो—
गरिया, छुश्रारा, स्व जली का मेवा सुण लै स्वामी पंडत न,
दे दिया मेरी भेंट जी श्रो—
चलया वे चलया स्वामी पंडित पंडिता गिश्रा न,
जा रिया मारुये देश जी श्रो—
कौण तां श्रर्जुन, कौन ता सुरजन श्रो बैठे छत्र जवान न,
मैं जी छत्र जवान जी श्रो—
इस पर दावा श्रागे हो गये, हुक्कम फरमाया न
हुक्कम फरमाया जी श्रो—
सिह जी दे कन्या जी जन्मी, गौड़ बंगाले में
टीका लंदा मारुये जी श्रो—
पंज रुपइये, इक दुशाला सुण लै स्वामी पंडता न,
लिश्रां मेते दान जी श्रो—

उपरोक्त गीत के श्राधार पर गूगा राजस्थान (मरुस्थल) के किसी राज्य का राजकुमार था। उसके पिता का नाम सेमल था श्रौर दादा का नाम जयमल था। बंगाल के राजा की राजकुमारी से उसकी शादी हुई। एक श्रौर 'वार' (गीत) से लगता है कि बहुत वर्षों तक गूगा ससुराल में रुक गया था बहिन ने संदेश देकर वापिस बुलाया तो उसकी श्रपने भाईयों से लड़ाई हो गई। श्रर्जुन

सुरजन दोनों मारे गए। इस पर मां ने उसे घर से निकाल दिया। पुनः गुरुओं की रक्षा करते उसका सिर कट गया परन्तु किंवदन्ती के अनुसार वह अपनी पत्नी सुलियार से मिलता रहा। यहां कालान्तर से मूल जीवनी चमत्कारिक बन गई है। ऐसा माना जाता है कि एक रात बहिन के कहने पर सुलिआर ने गोबर में तेल डाल कर चौका बना दिया था और सूर्य निकल आने पर गूगा वही अन्तर्ध्यान हो गया। इसी आधार पर शायद गूगा की स्थापना की जाती है।

लोक गाथा में यह सारी गाथा यों है :

गामां तां बाझों वीरा पुत नेईयों रहंदे भेणा देवाभो भाई मेरे राणिया मांमां,
तेरे दरबार वीरा धूप धुखदे आपू गिआ परदेस मेरे राणिया तेरे —
मारू तां देस वीरा सुना ओ पिया, सौरिया दा देश बसाया मेरे राणिया तेरा,
मारू दा देश वीरा सुना ओ पिया, कागदां न मिलदीस्याही ओ तेरा।
औंगुल कटावां वीरा कलम बणावां, खड़े अक्खर पाये ओ औंगुली,
तेरियां तां तेरिया वीरा वेदणां, भैण वजोगण होई ओ राणिया तेरिया,
रोंदिया कलोंदिया दे बंद ओ भिज्जे ऊपर दी भिज्जी ऐ दुलाई, ओ राणिया तेहिया।
कपड़ा तां होवे वीरा पीड़ ओ सुकावां रेशम पीड़िया न जांदा मेरे राणिया कपड़ा।
औंसिया पादी वीरा कांगा वे डुआरां, जेकर आवे मेरा माई, मेरे राणिया औ सियां।
जली ओ जाये वीरा मंगल ओ वार, बिछड़े भैणा दे भाई मेरे राणिया मंगल।
जिन्हां तां पैंठका वीरा पूजा करदा, गरुआं दे हत्या जी होन मेरे राणिया जिन्हां।
राही मुसाफिर वीरा जांदा रिआ, लेई सुनेहा मेरा जांया मेरे राणिया राही।
डारा दे बिच वीरा कूंजा गेईयां, भैणा दे बिछड़े न भाई मेरे राणिया कूंजा।

अर्जुन, सुरजन और गूगा की लड़ाई :

जौड़े	जाके बागर देस गूगे नूं कहंदे, गूगे राजे नू
(जुड़वां)	साढी तेरी अज्ज रामो-राम
गूगा	अब के दिन तक भाई राम न सिमरी, अब कैसी बोली राम-राम
जौड़े	जां सिर लैणे जां सिर देणे, जां डोला लैणा लाल।
गूगा	डोले दे बदले दो-दो दिंगा, जंग दा न करयो जोग।
जौड़े	जां सिर लैणे जां सिर देणे, जां डोला लैणा लाल।
	नीला तेरा चलया हमलुएं, पुज्यां जुद्ध बिच जाई।
	जंगी ढोल वजेया गनीसों, दो दल, भुभणे जो आए।

युद्ध के बाद घर पहुंचने पर :

बिच वे पहाड़ां माता नू सिमरा, जोता बालिया नू।
जे गढ दियां पूरे ज्ञान, मैं भी प्यासां, मेरा नीला भी प्यासा।

माता पाणी पिला।
पाणी दे बदले मैं दुध पियामा,
जोड़ियां दी खबर सुणा।
माता जौड़े तेरे रण बिच मारे, मारे पधरे मदान।
तेरे मारने दे जोड़े हैई नी, उन्हां मारदा करतार।
रावण जैसे मौत ने घेरे, जोड़े तेरे किदे पाणीहार।
बेटा इन्हां गल्ला सच्च न मन्नां, सच दी निशानी बता।
चक्क के खड़ा तेरे अग्गे सुट्टा, खड़े नू लै पछाण।
खंडिया जैसे खड़े बघेरे, रण बिच धड़ न लुग्रार।
माता दो तरबूज तिज्जो ग्रंदे, महलां ते थाल मंगा।
हुकम कीता सूरज गोली, गूगे दे अग्गे थाल टका।
थालां दे बिच सिर रख दित्ते, लैं परछावे माता खोल।
देख के मुंडिया गशिया पेईयां माता बाशला नूं, दोनों अर्जुन, सुरजन वीर।
किस तरह बेटा तेरे हत्थ वंगी जादे, माईया मसेरा जो किस तरह मारी तलवार।
गुस्से दे मारियां दे हत्थ वंगी जांदे, माईया मसे राणो,
गुस्से दे मरियां दे हत्थ वग जांदे, माईया मसेरा नू,
रण बिच मारी तलवार।
जिस देश जौड़े मारे, मर जा जौड़िया नाल।
खव्वे चीचुये जौड़े पाले, सज्जे पालिया गूगा राव।
पुठिया खजैंग्रां देश निकाला, मुड़ के न ग्राया मेरे देस।
वत्ती धारां माता मैंनू बख्श दे, मुड़ के नी ग्रौंदा तेरे देश।
सुख वसियो तेरा नगर, वेहड़ा धर्मियों।
जींदियो दे कदी मेले।

सुलियार के पास जाता है:

मैं भी प्यासा, मेरा नीला भी प्यासा, प्यासे नू पानी दिला।
पाणी दे बदले दुध पियानी, चेला गुरु गोरख नाथ दा।
इक बारी डियोढ़ी अन्दर आ।
डियोढी अन्दर आणा धर्म की राणी सुलिआरे
माता ने बोले मंदे बोल,
दस्स महीने तिज्जो ढिड्ड बिच राक्खेया माता वाशल ने
मां मां दे हुंदे चंगड़े बोल।

गूगा चला जाता है इस पर बहु सास से झगड़ती है:

मेरे हाण दियां सीस गुंदागण मेंरे गल में काले केस,
मेरे हाण दियां डेका फुल्लियां, मैं कैसी अमना मान।

मेरे हाण दिया सेजा वेछादिया मेरी सुनी पेई सेज।
मेरे हाण दिया बालकां खलादियां मेरी सुनी पेई गोद।

सास:- अग्गे चरखा, पिच्छे पीड़ा बैठी राज कमा,
अग्ग लगे तेरे चरखे पीहड़े,
मेरा राजा तोप मंगा।
नौकर हुंदा मैं चिट्ठियां पांदी, गिआं नू कित्थे लिआ
मांटोल मैं वी रंडी, मेरी सस्स वी रंडी
रंडा पिआ मारु देस।

सुलियार की बहिन बिजली से वार्तालाप :—

समना दे महला दीपक जगे तेरे—हेर मनेर,
कौण गिआ कौण मर गिआ, किदा रजाया सोग
अर्जुन, सुरजन मेरे देवर मरगे, तिजा गिआ गूगा राम
पिछले जन्म दिआं सकियां भैणा, लिया दे राजा टोल
अपणे राजे दा वरुण दिखा दे लिऔंगी राजा टोल
नीला घोड़े नर्मे दा जोड़ा ऊपर पतला सवार
हाथ वरदी, लूंगी दा तहमद गल बिच लसके काले नाग
मारेया लश्कारा गासे नू चढ़ गई, ले आऊंगी राजा तेरा टोल
दक्षिण चमकी, पश्चिमी चमकी, नजर न आया गूगा राम,
गूगे वरगा दरगाह मैं देखा, चौपड़ खेले पीरां नाले।

विरहन सुलियार का आसमान की बिजली जो कि हर जगह चमकती है का बहिन के रुप में वार्तालाप वेदना की तड़प दर्शाता है।

गूगा का और भी बहुत सी 'वारें' गाई जाती हैं परन्तु जो उपलब्ध हो सकी और जिनका वर्णन किया गया उससे निस्संकोच यह कहा जा सकता है कि गूगा चौहान सेमल का बेटा और जयमला का पोता था जिसकी मां का नाम वाशल (वाच्छल) और पत्नी का नाम सुलियार था। किंवदंती में जो लोक कथा मिलती है उसका समान रुप थोड़े अन्तर के साथ लोक-गाथाओं (वारों) में मिलता है। गूगा चौहान जो गूगा क्षत्रिय 'छत्री' के नाम से प्रसिद्ध हुये और जिनका पूजन भी किया जाता है, लोक गाथाओं और लोक कथाओं के आधार पर गुरू गोरखनाथ के आशीर्वाद से पैदा हुये और उन्हीं के चेले थे। गुरू गोरखनाथ का 'नाथ पंथ' साहित्य के आधार पर दसवीं शताब्दी में प्रचलित था तो गूगा चौहान भी दसवीं शताब्दी में ऐतिहासिक पुरुष प्रमाणित होते हैं कालान्तर में उनकी प्रचलित लोकगाथा में अन्तर आते-आते हमारी धार्मिक भावनाओं के

साथ जुड़ कर 'देवता' का रूप धारण कर गया। जिसे समाज ने व्यक्ति के रुप में ही स्वीकार कर लिया और प्रचलित रुप में निरन्तर परम्परागत पूजन-भजन होता चला आ रहा है।

अब यह लोक गाथायें विलुप्त हो रही हैं अनेक टोलियां अब 'गूगे की कार' बिना गाये ही मांग जाते हैं परन्तु 'गूगा नौमी' वाले दिन गुरू की टोलियां अब भी गूगा के स्थान पर रात-रात भर रतजागा करके (वारे) गाकर स्तुति करती हैं।

गूगे की यह वारें गाकर मांगने की प्रथा लगभग सारे उत्तरी भारत में प्रचलित है। गूगा नवमीं के दिनों में अलग- अलग बोलियों में समग्र यह लोक गाथा गाई जाती है परन्तु गूगा को देव रुप में स्वीकार किया गया है। लोक गाथा के आधार पर दसवीं शताब्दी के राजाओं और वर्णित स्थानों की खोज हो तो सम्भवतया गूगा क्षत्रिय ऐतिहासिक व्यक्तित्व प्रमाणित होंगे।

गांव गुरलवाड़ (कांगड़ा)
डाडा सीबा-१७७१०६

निरमंड क्षेत्र में प्रचलित भक्तिगीत

● सुरजीत सिंह पटयाल

निरमंड क्षेत्र का परिचय

पर्वत के राजा हिमालय के उत्तर में बसी 'कुर्पन घाटी' प्रकृति का एक रमणीय रंग स्थल है। प्रकृति ने जी खोल कर यहां अपना अपार सौंदर्य और अतुल वैभव लुटा दिया है। इसी घाटी में निरमण्ड गांव उत्तरी हिमालय के निम्न तराई की पहाड़ियों के बीच जिला कुल्लू के ग्रौटर सिराज में 4444 फीट की ऊंचाई पर बसा है। निरमण्ड गांव हिमाचल प्रदेश का सबसे बड़ा गांव है। इस गांव में लगभग पांच सौ घर हैं और इस गांव की जनसंख्या साढ़े चार हजार (4500) के लगभग है। यहां के वासियों में ब्राह्मणों की संख्या अधिक है, ब्राह्मणों के अतिरिक्त यहां राजपूत, सुनार, खश, लुहार और कोली जाति के लोग भी रहते हैं।

निरमंड क्षेत्र में प्रचलित भक्तिगीत :

भक्ति गीतों में वे गीत इस क्षेत्र में प्रचलित हैं जिनकी रचना यहां के कवियों ने की है। जिनमें पं. देवी राम भारद्वाज का नाम प्रमुख है। ये खानदानी कवि थे। इन्होंने 1921-22 के मध्य अपने पूर्वजों की सारी भक्ति रचनाओं को एकत्र करके एक पुस्तक लिखी। पं. देवी राम ने इन भक्ति रचनाओं को ब्रह्मभक्ति का नाम दिया। कहा जाता है कि इनके पूर्वज परशुराम के राजकवि थे। पं० देवी राम ने हर भक्ति रचना के पश्चात कबीर और सूरदास के नामों का उल्लेख किया है। पं० आत्माराम जो स्व. पं० देवी राम केसुपुत्र हैं का कहना है कि उनके पूर्वज कबीर और सूरदास को अपना आदर्श मानते थे। इसीलिए हर रचना के पश्चात कबीर या सूरदास के नामों का उल्लेख किया है। पं. देवी राम ने इन भक्ति रचनाओं को बारह भागों में बांटा है जो इस प्रकार है :—

1. पहली वेला सायं काल आरती
2. फिर बेला गौऊरी

3. फिर बेला कल्याण

4. फिरे बेला कानड़ा

5. फिर बेला मारु

6. फिर बेला सारिग

7. फिर बेला सोरठ

8. फिर बेला कदारा

9. फिर बेला आसा

10 फिर बेला रामकली

11. फिर बेला मयांदडा

12 फिर बेला ढोल

इन भक्ति गीतों का सम्बन्ध नृत्य से है। जेठ की सक्रांति के दिन पुरुष माता अम्बिका के आंगन में देव कीर्तन करते हैं। देव कीर्तन के समय इन भक्ति रचनाओं का गान किया जाता है और साथ में नृत्य भी किया जाता है। इन भजनों की संगत ढोलक और मंजीरा के साथ की जाती है। इन भजनों के साथ जो नृत्य किया जाता है उसे 'नाटारम्भ' कहते हैं। इन भक्ति रचनाओं का गान तथाकथित स्वर्ण लोग ही करते हैं।

कुछ भक्ति रचनाओं को छोड़ कर अन्य भक्ति रचनाओं के नाम शास्त्रीय रागों से मिलते जुलते हैं जैसे गौऊरी, कल्याण, कानड़ा, केदारा, रामकली इत्यादि। पं. देवी राम ने जिस भक्ति रचना को कल्याण के अन्तर्गत रखा है उसके आरोह में तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है और अवरोह में शुद्ध मध्यम का। जबकि राग कल्याण में केवल तीव्र मध्यम का प्रयोग होता है।

'ब्रह्म भक्ति' पुस्तक में जितनी भी भक्ति रचनायें हैं उनके नाम शास्त्रीय रागों से मिलते जुलते तो हैं परन्तु रागों की दृष्टि से ये सारी भक्ति रचनायें अशुद्ध हैं।

हो सकता है कि पहले इन भक्ति रचनाओं की बन्दिशें रागों के स्वरों में बन्धी होती और रागों को ध्यान में रख कर इन भक्ति रचनाओं का गान होता था। आज इन भक्ति रचनाओं को गाते समय रागों के स्वरुप की ओर ध्यान इसलिए नहीं दिया जाता क्योंकि किसी भी भक्ति रचना के साथ उसकी स्वर लिपि नहीं लिखी गई है और ना ही यहां के स्थानीय लोगों को संगीत का ज्ञान है।

इन भक्ति रचनाओं के कुछ अंश नीचे प्रस्तुत है:

ब्रह्म भक्ति (गौऊरी)

कंवन दिशा से आये पवन सुत, कंवन दिशा से आये? उत्तर दिशा से जोध्या नगरी, चौक कोट से आये पवन सुत, कंवन दिशा से आये?

1. कंवन का पुत्र कंवन का पायक,
कंवन स्नेहा लेई आये पवन सुत क्रंवन दिशा से आये ?

2. अंजली का पुत्र राम का पायक,
सीता समर्थें आये पवन सुत कंवन दिशा से आये।

3. कहां तेरो राम कहां तेरो लच्छमण,
कहां से मुदड़ा ले आये पवन सुत कंवन दिशा से आये !

4. बने मेरो राम बने मेरा लच्छमण,
बन से मुदड़ा ले आये पवन सुत कंवन दिशा से आये।

बह्म भक्ति 'कानडा'

तू मेरो तरवर मैं तेरो पंच्छी
अंबर एक ध्रुव नारद साथी

1. तुम भयो चंद्रा हम भयो चकोरा,
तुम भयो गिरधर हम भयो मोरा,
तू मेरो नरवर...

2. तुम भयो गऊवा हम भयो बाच्छा,
तुम भयो सायर हम भयो माच्छा,
तू मेरो तरवर...

3. तुम भयो दिऊवा हम भयो बाती,
तुम भयो तीरथ हम भयो वासी,
तूमेरो तरवर...

ब्रह्म भक्ति 'आसा'

मेरी-मेरी करतो गो जन्म गयो
जन्म गयो रे लोभी हरन गयो,
मेरी-मेरी करतो गो जन्म गयो

1. बारा बरस बाला तन खेले,
बीस बरस जपतप न कियो
तीस बरस हामें देऊ बीना पूजें,
फिर पछतायो बीरिघा भयो,
मेरी-मेरी करतो गो जन्म गयो।

2. हाथ पांव मोरे काम्पन लागे,
नयन नीर एसराज भयो,
जीब्या बचन सुध नहीं आवे,
अब क्या धर्म की बात क्यो,
मेरी-मेरी करतो गौ जन्म गयो ।

इन धार्मिक गीतों की रचना का ढंग और इनके गायन में प्रयोग किये जाने वाले स्वरों से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी समय काव्य और संगीत इस क्षेत्र में उन्नति पर था। इन धार्मिक गीतों के नाम जो शास्त्रीय रागों से मिलते जुलते हैं इस बात का प्रतीक है कि इस क्षेत्र में शास्त्रीय संगीत भी कभी प्रचार में रहा है। इस प्रकार निरमण्ड क्षेत्र में प्रचलित भक्ति गीतों का अध्ययन करने के पश्चात हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि इस क्षेत्र में प्रचलित धार्मिक गीत अपने आप में अद्वितीय हैं। सरसता, स्वभाविकता और सरलता में ये अपना सानी नहीं रखते।

एम० ए० (संगीत) गोल्डमेडलिस्ट एम० फिल० (संगीत)
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला —१७१००५

स्मृति कण

● भगत राम द्विवेदी

चम्बयाली की परिप्रेक्षा में ही नहीं विश्व की सब भाषाओं के पर्यालोचन में भी जिस विश्व विख्यात जगद्गुरु भाषा के दर्शन किये जा सकते हैं तथ। जिसका एक-एक शब्द जैसी व्युत्पति और निष्पत्ति के आधार पर अर्थ का वैज्ञानिक गाम्भीर्य एवं अर्थ की स्पष्ट अभिव्यक्ति कराने में सक्षम है उसी गीर्वाण वाणी, भारती, सस्कृत की बेटी चम्बयाली जो इतना लम्बा समय व्यतीत होने पर भी अपनी जननी की आधार भूत वैज्ञानिक अभिव्यक्ति के कितने पास और दूर है उसी का संक्षिप्त परिचय इस तुच्छ प्रयास का मुख्य विषय है।

शाकटायन, वादरायण, पाणिनि वर रुचि जैसे भाषा वैज्ञानिकों ने भाषा प्रकृति की प्रगति शीलता को बांधने का भरसक प्रयत्न किया परन्तु भाषा प्रकृति उस बन्धन से मुक्त होकर स्वतन्त्र मार्ग पर अग्रसर होती ही चली आ रही है। एक-एक देश में ही इसकी अनेक रूपता दिखाई देती है सम्पूर्ण विश्व का तो कहना ही क्या। तदापि साहित्य सृजन शक्ति सम्पन्न तत्कालीन भाषा अपनी साहित्यिक सम्पन्नता पर गौरवान्वित आज भी खडी है। स्वतन्त्र पथ पर बढ़ना भले ही रोका न जा सका हो किन्तु उसकी तत्कालीनता अवश्य बंधी रह गई एव जितने भी नव निर्माण सामने खड़े हो गए हैं उनके मूल में भी वही जन्म जात कण वर्तमान हैं जो सुदूर पूर्व से वंश क्रम से चले आ रहे हैं। उस वंश क्रम की झलक में चम्बयाली से सम्बन्धित थोड़े से स्मृति कण बटोर सका हूँ जिन्हें पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करके स्मृति बनाए रखने की आशा करता हूँ। यदि पाठक इस सम्बन्ध में मनन के मार्ग पर थोड़ा दूर तक जाने का कष्ट करते हैं तब वे पाएंगे अतीत की दूरी मां-बेटी की ममता को आज तक भी छुड़ा नहीं पाई। पर दूरी के श्रम को शिथिल भी नहीं माना जा सकता। जितना कुछ वह कर सकी अपर्याप्त नहीं किन्तु जो कुछ रह रहा है वह भी पर्याप्ति से कम नहीं। तत्समता और तभद्वता दोनों को अस्वीकारा नहीं जा सकता। तत्समता मन, बुद्ध, माता, पिता, द्वार, दूर, शनै जैसे शब्द लेकर खड़ी हो जाती है तो तद्भवता मां, बब अम्मा-बापू दरवाजा आदि उदाहरण प्रस्तुत करने लगती है। बात दोनों की तर्क संगत एव तथ्यता पूर्ण है। इस लिये कहना चाहिये "चम्बयाली" अपनी जननी संस्कृत के पग चिन्हों पर

चलती हुई सामयिक दौड़ में भी किसी से कम नहीं। ऐसा इसलिये कि बीज रूप में तत्समता और बाह्य रूप सामयिक प्रत्यय प्रभावी पाया जाता है। सम्पर्क और वातावरण इस का मुख्य कारण जो है।

अतएव भविष्य की दूरी में डूब जाने की आशंका से थोड़े से स्मृति कण पाठकों की ज्ञान निधि में डालने का यह तुच्छ प्रयास पाठक अस्वीकारेंगे नहीं। अगली पंक्तियों में अपनी अल्पज्ञता का आभास रहते हुए भी यह प्रयास किया जा रहा है कि चम्बयाली में प्रयुक्त होने वाले शब्द और धातु मौलिक तत्समता रहते भी किस प्रकार सांसर्गिक प्रत्यय भिन्नता में फस जननी के पग चिन्हों से भटक भी गई है। जैसे संस्कृत की लिख धातु चम्बयाली में भी आज तक लिख ही तो अवश्य है परन्तु संस्कृत के ति. अन्ति प्रत्ययों के स्थान पर वर्तमान काल में दा और दे प्रत्यय जुड़ते हैं। भविष्यत् में घा घे और भूत काल में दोनों वचन एवं तीनों पुरुषों में 'या' प्रत्यय होता है। उदाहरणार्थ तीनों कालों मे रूपावली प्रस्तुत है—

लिख—लिखना

वर्तमान काल

	एक वचन	बहु वचन
प्र. पु.	लिखदा	लिखदे (ए.व, में है ब.व. में हिन, अन्त में)
म. पु.	,,	,,
उ पु	,,	,,

भविष्यत काल

प्र. पु.	लिखघा	लिखघे
म. पु.	,,	,,
उ. पु.	,,	,,

भूत काल

प्र. पु.	लिख्या	लिख्या
म. पु.	,,	,,
उ पु.	,,	,,

ऐसा कुछ शब्दों के साथ भी होता है। जैसे—

बालक

	संस्कृत		चम्बयाली	
	ए. व.	ब. व.	ए. व.	ब. व
कर्त्ता	बालक:	बालका:	बालक, बालको	बालक, बालकां
कर्म	बालकम्	बालकान्	बालका जो	बालकां जो
करण	बालकेन	बालकै:	बालके, बालका कनैं	बालकां, बालकां कनैं
सम्प्र.	बालकाय	बालकेभ्य:	बालका जो, ताईं	बालकां जो, तांई
अपा.	बालकात्	बालकेभ्य:	बालक किछा	बालकां किछा
सं	बालकस्य	बालकानाम्	बालके रा, दा	बालकां रां, दा
अ.	बालके	बालकेषु	बालका पर	बालकां पर
सम्बो.	हे बालक	हे बालका:	ओ बालक	ओ बालको!

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है—तत्समता कैसे विवश होकर तद्भवता की ओर आकर्षित हो चुकी है। अब आगे सब शब्दों और धातुओं की रूपावलियां न लिखकर स्मृति करणों को विभक्त करके लिखा जा रहा है, जिन से चम्बयाली के उद्भव और विकास का मार्ग प्रशस्त बन जाता है।

तत्सम अविकारी शब्द

संस्कृत	चम्बयाली	हिन्दी
न	न	न
बिना	बिना	बिना
दूर	दूर	दूर
शनैः	शनैः	धीरे, शनैः

तद्भव अविकारी शब्द

अद्य	अज	आज
अवारपार	बारपार	आरपार
परश्व	परशु	परशों
इत्थं	इय्हां	ऐसे
उपरि	उप्र	ऊपर
कथं	किय्हां	कैसे
तथा	तिय्हां	तैसे, वैसे

कदा	करवणी	कब
तदा	तरवणी	तब
तत्र	तित्तो	वहां
अधुना	अब्बे	अब
त्वरा	तौल्	शीघ्रता
कुत्र	कुते	कहां
अत्र, इंह	इत्तो	इधर, यहां
निकट	नीड़े, नेड़े	समीप
एवं	इय्हां	ऐसे
मा	मत	मत, नहीं
नहि	नी	नहीं

तद्भव अविकारी शब्द

संस्कृत	चम्बयाली	हिन्दी
सायं	संझ	साम
बहिर	बाहर	बाहिर
नित्ये	नित	नित्य
हा ?	हय	हाय
यत्र	जित्ते	जहां
यथा	जिहां	जैसे
सर्वत्र	समनी जगा	सब जगह
एकदा	इकबारी	एक बार
किमर्थं	किजो	क्यों
पुरा	पैहुले	पहले
यावत्	जितणा, जितूणा	जितना
आम्	हां	हां
इतस्ततः	इत्तो तित्तो	इधर उधर
तिरस	त्रेढा	तिरछा
तदानीं	ता	तब
यथा कथा	जिहां तिहां	जैसे तैसे
सदृश	साही	समान
साकं	साथ	साथ
इतः	इधा का, इतांह का	यहां से
ततः	उधा का, तितांह का	वहां से

यत:	जितांह का, जिधा का, किछा	जहां से
कुत:	कुधा का, कुतांह का, किछा	कहां से
अन्तर	अन्दर	अन्दर
पश्चात्	पिच्छे	पीछे
क्व	कुते	कहां
उच्चै:	ऊचे	ऊंचे
मिथा	मिते	आपस में

तत्सम संज्ञा शब्द

संस्कृत	चम्बयाली	हिन्दी
बालक	बालक	बालक
बाल	बाल	बाल
केश	केश	केश
वाचक	वाचक	वाचक
पाठ	पाठ	पाठ
गीत	गीत	गाना
मित्र	मित्र	मित्र
सुख	सुख	सुख
दुःख	दुख	दुख
ज्ञान	ज्ञान	ज्ञान
फल	फल	फल
आदर	आदर	आदर
पाप	पाप	पाप
धर्म	धर्म	धर्म
भार	भार	भार
बार	बार	बार
घन	घन	घन
शीत	सीत	ठंड
मन	मन	मन
बुद्धि	बुद्धि	बुद्धि
द्रोह	द्रोह	द्रोह
रोग	रोग	रोग
कज्जल	कज्जल	कज्जल

कलंक	कलंक	कलंक
गर्भ	गर्भ	गर्भ
विचार	विचार	विचार
जटा	जटा	जटा
खुर	खुर	खुर

तत्सम संज्ञा शब्द

ईश्वर	ईश्वर	ईश्वर
साधु	साधु	साधु
सन्त	सन्त	सन्त
पशु	पशु	पशु
गुरु	गुरु	गुरु
कन्या	कन्या	कन्या
ऋषि	ऋषि	ऋषि
मुनि	मुनि	मुनि
नेत्री	नेत्री	नेत्री
नदी	नदी	नदी
विद्वान्	विद्वान्	विद्वान्
इच्छा	इच्छा	इच्छा
देवी	देवी	देवी
राजा	राजा	राजा
पंच	पंच	पंच

तद्भव संज्ञा शब्द

मनु	मण्हु	मनुष्य
जानु	जान्हु	जानु
जंघा	जंघ	जांघ
पाद	पैर	पाओं
हस्त	हथ	हाथ
मुख	मुंह	मुंह
अंगुली	उंगली	अंगुली
पक्षी	पंछी	पक्षी
घोटक	घोड़ा	घोड़ा
हस्ती	हाथी	हाथी
मयूर	मोर	मोर

तद्भव संज्ञा शब्द

काक	का	कौवा
कुक्कर	कुत्ता	कुत्ता
बिडाल	बिलाड़, बिल्ला	बिल्ला, बिलाव
कोकिल	कोयल	कोयल
वत्स	बच्छू	बछड़ा
उज्ज्वल	उज्जल	स्वच्छ
पुराण	पराणा	पुराना
सायं प्रातिक	संझम्याणु	सामसुबेरू
दिन	ध्याड़ी, दिन	दिन
भक्त	भगत	भक्त
मुसल	मोहल्	मूसल
भक्ति	भगति	भक्ति
लोम	रूम	रोम
कर्ण	कन	कान
दंष्ट्रा	दाठ	दाढ़
उपाय	उपा	उपाय
उदित	उचरा	बोला
पथ्य	पथ	पथ्य
जातक	जागत	जातक
शिक्षा	सिख	सीख
पुण्य	पुन्न	पुण्य
फटा, फन	फिण	फन
पुच्छ	पुंछ	पूंछ
तिथि	तिथ	तिथि
बन	बण	वन
हिम	हिउं	बर्फ
जीवन	जीण	जीना
नाम	नां	नाम
कण	कुणका	कन
निद्रा	निन्द्र	नींद
छाग	छेलू, छेला	बकरा
त्रिषा	त्रेह	प्यास

बुभुक्षा	भुख	भूख
पिपासा	प्यास	प्यास
नख	नँह	नाखुन
दन्त	दन्द	दान्त
श्रद्धा	सरधा	श्रद्धा
नासिका	नक	नाक
श्रंगुष्ठ	गूंठ	श्रंगूठा

सर्वनाम

श्रहं	हउं, श्रउं	मैं
त्वं	तू	तू
स	से	वह
एष	एह	यह
क	कुण	कौन
सर्वं	सभ	सब
य	जे	जो
कश्चित	कुणक, कोई	कोई
किं	कै	क्या

विशेषण

पीत	पीला	पीला
हरित	हरा	हरा
कृष्ण	काला	काला
श्वेत	सफेद	श्वेत
नील	नीला	नीला
लाल	लाल	लाल
कटु	कौड़ा	कड़वा
लावण्िक	लूणका	नमकीन
मधुर	मिट्ठा	मीठा
एक	इक	एक
द्वौ	दो	दो
त्रय	त्रै	तीन
चत्वार	चौर, चार	चार
पंच	पंज	पांच
सप्त	सत	सात

अष्ट	अठ	आठ
नव	नौ	नौ
दश	दस	दस
द्वितीय	दूआ	दूसरा
तृतीय	त्रीया	तीसरा
चतुर्थ	चौथा	चौथा
पंचम	पंजमा	पांचवां
सप्तम	सतुआं	सातवां
अष्टम	अठुआं	आठवां
नवम	नौउआं	नवमा
दशम	दसुआं	दसवां
देशीय	देशी	देश का
परदेशीय	प्रदेशी	परदेशी
धार्मिक	धर्मी	धर्मी
पापी	पापी	पापी
ग्रामीण	ग्रांई	ग्रामीण
नागरिक	नगरू	नागरिक
गुणी	गुणी	गुणी
सांसारिक	संसारी	सांसारिक
तदीय	तिस कनुआं	उसवाला

क्रिया विशेषण

मन्दं मन्दं	मठे मठे	धीरे धीरे
शनैः	शनै	शनै
कूर्दि	कूदी	कूद करके
त्वरया	तौलें	जल्दी
हसत्	हसदे	हसते
वदत्	बोलदे	बोलते

तत्सम धातुएं

संस्कृत	चम्बयाली	हिन्दी	अर्थ
तप	तप	तप	तपना
दुह	दुह	दुह	दुहना
पूर	पूर	पू	पूरना, भरना
ओविजी (विज)	विज	विज	कांप उठना

हस	हस	हंस	हंसना
किर	किर	किर	किरना
मन	मन	मान	मानना
जन	जन	जन	जन्मना
कथ	कथ	कथ	वाक्य प्रबन्ध
तन	तन, तरण	तान	तानना
लिख	लिख	लिख	लिखना
पठ	पढ़	पढ़	पढ़ना
पच	पक	पक	पकाना
पिष-श	पीह	पीस	पीसना
पिब	पी	पी	पीना
प्रच्छ	पुछ	पूछ	पूछना
पुष	पोष-स	पोस	पोसना
गद	गला	बोल	बोलना
गण	गिण	गिन	गिनना
ग्रह	ग्रस	ग्रस	ग्रसना
चि	चुग	चुन	चुनना
चिन्त	चिन्द	चिन्त	चिन्ता करना
छिद	छेक	चीर	चीरना
छो	छोर	छोर	थोड़ा-थोड़ा काटना
छाद	छा	छा	छाना, ढांपना
जन	जन्म	जन्म	उत्पन्न करना
जागृ	जाग	जाग	जागना
कृष	छिक	खींच	खींचना
कृ	कर	कर	करना
क्री	खरीद	खरीद	खरीदना
क्रूं	घ्रूं	घुड़	घुडकना
कृ	कट	काट	काटना
खन	खण	खोद	खोदना
डुधाञ्	धार	धार	धारण करना
डीङ	उड	उड़	उड़ना
तन	ताण	तान	तानना
तिप	टप	टप	टपकना, चूना
त्रसी	त्रैह	डर	डरना
त्रिण	त्रिभ	तिम	थोड़ा-थोड़ा खाना
दंश	डस	डस, डस, दंश	डसना
दा	दिं	दे	देना

द्रा	दौड़	दौड़	दौड़ना
द्रु	दुख	दुख	परिताप करना
दृश	दिख	देख	देखना
नट	नच	नाच	नांचना
नृत	नच	नाच	नांचना
पृ	पुन	पुन	पुनना
फल	फल	फल	फलना
बन्ध	बन्ह	बांध	बांधना
ब्रू	बोल	बोल	बोलना
वद	बोल	बोल	बोलना
भञ्ज	भन	तोड़	तोड़ना
भुज	भोग	भोग	भोगना
भ्रस्ज	भुन	भून	भूनना
माङ (मा)	नाप	माप	मापना
मरज	मांज	मांज	मांजना, धोना
मृ	मर	मर	मरना
यभ	जभ	जभ	मैथुन करना
रञ्ज	रंग	रंग	रंगना
रुध	रोक	रोक	रोकना
रुंध	रुंध	रुक	रुकना
लिम्प	लिम्ब	लीप	लीपना
लभ	लिं, लें	लेना	लेना है
वध	बढ	काट	काटना
वच	वाच	वाच	वाचना
वय	बुण	बुन	बुनना
विद	बटोल	बटोर	बटोरना
शीङ	सूं	सो	सोना
शुष	सुक्	सूख	सूखना
षिव	सीं	सी	सीना
षूङ	स्वीं	सू	जन्म देना
क्षुद	कुट	कूट	कूटना
सह	सँह	सह	सहन करना
साध	सिधेर	सिद्ध	सिद्ध करना
सिच	सिंज	सींच	सींचना
स्तम्भ	थम	थम	थमना
स्फुट	फुरक	फरक	फरकना
स्वप	सू	सो	सोना

उपरोक्त विवरण द्वारा संस्कृत और चम्बयाली का सम्बन्ध स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है। अब भूरी सिंह संग्रहालय चम्बा में उपलब्ध ताम्र पट्टों में लिखी चम्बयाली की संस्कृत निष्ठता पर भी प्रकाश डाला जा रहा है। आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व की चम्बयाली किस गति से आज के रूप तक पहुंची इसका स्पष्टीकरण भी प्रस्तुत हो जाएगा। भाषा की प्रगति शीलता तो सिद्ध होगी ही साथ साथ प्राचीन शब्दों का प्रयोगात्मक परिचय भी हो जाएगा। उक्त पट्टों में प्रारम्भिक प्रशस्ति वाक्य संस्कृत में है। यहां केवल चम्बयाली के ही कुछ वाक्य लिखना उपयुक्त समझा गया है।

1387 विक्रमी

1. "तत्र सिमा पूर्वं दिशि गिरोलि बड़े बग पिचो ढलदे कुण्हल खुवे बिड औरो।" (वहां सीमा-पूर्व दिशा में गिरोलि बड़े बाग के पीछे और ढले [इकट्ठी कृषि योग्य भूमि] के कुण्हल खेत तक)

1461 विक्रमी

2. "नोलक द जे बशे कोई होय तीनी भोगतण सो धर्म पलण" (नीलक के वंश में कोई हो तो उसने (दिया गया शासन) भोगना उसी ने धर्म की पालना करनी)।

1507 विक्रमी

3. "चाकरी खिजमत श्री महाराजे दे हाजर करणी। महाराजे दे बंशे दा होवे तिनी धर्म पालणा" (नौकरी, सेवा महाराज के हाजर करनी। महाराज के वंश का हो उसने धर्म पालना)

1636 विक्रमी

4. "जे कोई अगे में बंसे द सूर्य बंशी होए तिनी एह मेरा धर्म रखणा" (आगे जो कोई मेरे वंश का सूर्यवंशी हो उसने मेरा धर्म रखना)।

1702 विकमी

5. "पूर्वं दिशा ढेपे रि वेही तथा अरड़े दे गोहर अन्दर सुनोटि चौरे तथा टिकर अन्दर" (पूर्वं दिशा में ढेपे [नाम विशेष] की पहाड़ी तथा अरड (नाम) के मार्ग से अन्दर सुनोटि तथा टिकर (नाम विशेष))।

1833 विक्रमी

6, "उत्तर दिशि शाचेडी उआर घराटे समेत सुरतानपुरे दी राखा बढी जे बाग कीता था तिस बागे समेत सुरतानपुरे दी जे राख से कुसे नी बढणी से जीहा हे से तीहा ही रखणी" (उत्तर दिशा में साचेडी (नाला विशेष) के इस किनारे घराट सहित सुरतानपुर की सुरक्षित अरण्यानी काटकर जो बाग बनाया था उस सहित सुरतानपुर की जो सुरक्षित अरण्यानी है वह किसी ने काटनी नहीं है। वह जैसी है वैसी ही रखनी है)

1879 विक्रमी

7. "इस जिमी बिच भुमड़ी दो वसदी हिन्न तिन्हा की बाधब्दारू नहीं पारणा कने होर कमोस भी माप किती" (इस भूमि पर दो परिवार रह रहे हैं उन्हें कार बगार नहीं डालना और दूसरे काम काज भी क्षमा किए गए हैं।

1913 विक्रमी

8. "श्री महाराजे श्री सिंह श्री बाडि दी देवी जल मुखी को भोगे की सासरण चाढ्या एह सासरण हस्तोदक करि चाढ्या" (श्री महाराज श्री सिंह जी द्वारा श्री बाडी वाली देवी जलमुखी के लिए भोगार्थ शासन (राजाज्ञा से दी गई भूमि, चढ़ाया (दिया) गया है। यह शासन संकल्प करके चढ़ाया गया है)।

ताम्र पट्टों से पूर्व के शिलालेख भी उपलब्ध हुए हैं, सम्भवत: कुछ और भी प्राप्त हों' अत: तद्‌गत चम्बयाली के स्वरूप का उल्लेख भविष्य पर छोड़ रहा हूं।*

अब चम्बा हिमाचल का एक जिला बन जाने, हिमाचल के भी विशाल होने, यातायात की अधिक सुविधाओं के मिलने और पारम्परिक सम्बन्धों का वृत बढ़ जाने से चम्बयाली भी सर्व गम्यता की ओर बढ़ती जा रही है। जैसे कुछ दशाब्दी पूर्व जा बुन्ह वैह जखणी हउं बोलघा तखणी औटण पाए। और अब जा भिंक बैह जां मैं बोलघा तां आटा पाए। जाओ नीचे बैठो, मेरे बोलणे पर ही औटण (आटा) पाणा।

विशेष - औटण साग में डाले जाने वाले थोड़े से आटा का लोक-शब्द है।

इस प्रकार बुन्ह, हउं, जखणी, तखणी (नीचे, मैं, जब, तब) लोक सीमित शब्द अपनी सत्ता से फिसलते जा रहे हैं। इतना ही नहीं दूहरी विभिक्तियों का प्रयोग भी सुनाई देने लगा है। जैसे मिजो के बदले मेरे को, तिजो के स्थान पर तेरे को। एह बाला, ओह बाला-एह, ओह की जगह प्रयुक्त होता जा रहा है। इसी तरह मेरे वाला, तेरे बाला, उस बाला। शब्दों और विभक्तियों में यदि ऐसा ही क्रम चलता रहा तो वे दिन दूर नहीं जब शब्द तण्डुल और विभक्ति दाल की खिचड़ी रावी, ब्यास, भागा एवं गंगा, यमुना के जल में पकने लगेगी। ऐसा होना प्रसन्नता की बात इसलिए है कि चम्बयाली बोली के क्षेत्र से भाषा के क्षेत्र में पहुंच जायेगी।

मकान न० १५१, मुहल्ला चौंतड़ा
चम्बा (हि० प्र०)

---

*विशेष : 1910 एवं 1922 ई० डॉ० हचिन्सन की पुस्तक मंगल समाचार और डॉ० ग्रियंसन की लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इण्डिया (1916) में उद्धृत चम्बयाली के उदाहरण मेरे लेख चम्बयाली में प्रकाशित साहित्य—एक समीक्षा में देखिए।

संस्कृत भाषायाः वैशिष्टयम्

● रमाकान्त जोशी
सम्पादकः

संसारेऽस्मिन् आदिकालादेव जनानां परस्परं मनोभावनां ज्ञानार्थं अनेकाः भाषाः समुत्पन्नाः, विलुप्ताश्च। कालक्रमेण अनेकानां भाषाणामुदय लोप क्रमोऽद्यापि दरीदृश्यते। मनुष्यः भाषया विना किमपि कर्त्तुं नैव शक्यते। भाषा समाजस्य मिथः सम्पर्क हेतवे अनिवार्यमावश्यकम् च साधनम्। युगान्तरेण भाषा, शनैः शनैः रूपान्तरतां संप्राप्नुवन्ति। एवमद्यावधि असंख्याः भाषा आगता गताश्च, किन्तु संस्कृत भाषैव एतादृशी भाषा या आदिकालात् समागता अद्यावधि च तदेव शोभते।

संस्कृत भाषा देवानां प्रत्यहं व्यवहार्या भाषा। अतः इयं देव भाषा इति कथ्यते। अस्यामिदं वैलक्षण्यं वैशिष्टयं च वर्तते, यद् स्वकीय अलौकिक कोषात् अनेकाः भाषाः प्रसूताऽपि स्वयमिव यथा पूर्वमेव, नव तरेण कल्याण तरेण, स्वकीयेन रूपेण विराजते, यथा दीप ज्योतिः इतरां दीपज्योतिं प्रज्वाल्यापि स्वयं यथापूर्वमेव प्रदीप्ता तिष्ठति। अस्या भाषायाः व्यवहार क्षेत्रं युगानुरूपं न्यूनाधिकं च समजायत् किन्तु तत्रापिकारणं मानव समाजस्य, तात्कालिकं शासन व्यवस्थायाः वा उपेक्षोपेक्षे एव। भाषेयं स्वकीय विकासकाले राष्ट्रभाषापदेऽप्याभिषिक्तासीत्। तदा समस्तं शासकीयं लैखिकं वाचिकं च कार्यजातम् संस्कृत भाषायामेव प्राचलत्। तात्कालीय समस्त पदाधिकारिणां नामानि संस्कृत भाषा ग्रन्थेषु दृश्यन्ते यथा अमात्यः, सचिवः, भृत्यः, माण्डारकाः, कोषाध्यक्षः, नगरपालः, द्वारपालः, क्षेत्रपालः इत्यादयः।

संस्कृताऽध्ययन प्रभावेण, मनुष्याणां हृदयेषु दानवीय दोषाणा प्रदेशो कदापि न सम्भाव्यते। प्रविष्टे सत्यपि तदैव, तद् विनाशो भवति यथा प्रकाश सान्निध्यात् अन्धकारस्य, ज्ञानेन मोहस्य, भक्तया भयस्यच, विनाशो भवति।

अतएव शासनं प्रार्थ्यते यद् तेनाचिरादेव अन्यविधियोजनावत संस्कृत भाषायाः अपि सम्प्रसारणाय, विकासाय च निर्दोषां व्यापकां सुस्थिरां च कामपि योजनां साकार्य्य रूपेण परिणमनीया।

जयतु संस्कृतम्

श्री रामस्यादर्श:

● आचार्य मदन मोहन शर्मा

समुद्धाराय लोकस्य सत्यसंरक्षणाय च ।
भक्तानां क्लेश नाशाय रामोजातः कुलेऽमले । १ ।

यदायच्चेष्टितं लोकै: रामेण क्रियते हि तु ।
प्रजानां रंजनार्थाय रामो भूमाववातरत् । २ ।

देवैरपि कांक्षितं जन्म पूते रघुकुले तदा ।
क्षालयन् सर्व पापानि जन्म जग्राह राघव । ३ ।

त्रासेन रक्षसां लोके क्रिया लुप्ता च याज्ञिकी ।
स्थापिता सा च रामेण रावणान्तकरेण वै । ४ ।

ब्रह्मणा चिन्तित जन्म पुण्ये दशरथान्वये ।
तदिच्छां पूरयन् शुद्धां रामः साकेतमागतः । ५ ।

आदर्शो रामभद्रस्य त्रिषु लोकेषु गीयते ।
पालनं यस्य सर्वेषां महदानन्ददायकम् । ६ ।

अनुजस्य हि कर्तव्यं लक्ष्मणेन धृतं यथा ।
नरास्तथैव कुर्वन्तु भ्रातृ प्रेमदृढव्रतम् । ७ ।

गुरोरनुज्ञा परिपालनार्थं
तत्याज राज्य सुखर्गतुष्टयै
धृत्वाम्वरं वल्कलमादिदेव:
ययावरण्यं निजभक्ततोषी । ८ ।

रामजन्मदिने नूनं सर्वेषां स्यात् सुमङ्गलम् ।
वन्दे श्री रामभद्रं त भूयो भूयो नमाम्यम् । ९ ।

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय,
शिमला-171 004

श्रीराम यशोवर्णनम्

● देवकी नन्दन

लसति राम यशो विमलं सर:
त्रिविध तापहरं शुचि पावनम्
तदवगाहनकारिषु भारते,
तुलसिदास पुरा ह्यनुमन्यते । १ ।

तुलसिनोन्मथिते सरसिस्विह
विमल राम यश: पयसायुते
सगुण भक्तिरसं नवनीतकम
वितरितं तरतां भवसागरम् । २ ।

सकल मानव धर्म निबोधकम्
गुरुजनस्य हि शासन मादरात्
स शिरसा मनसा खलु धारयन्
न सहसा किमु राज्यमहोत्यजन् । ३ ।

विगत राज्यमदो भरताग्रजो
रघुकुलं प्रथयन् जगतीह वै
दनुजवंश मथापि च मर्दयन्
खग मृगैरपि साधु निषेव्यते । ४ ।

रघुकुलस्य शिरोमणिरात्मनि
प्रतनु नीति गुणान् प्रतिपालयन्
बनचरैर्मृग पक्षिभिरादरात्
अनुगतो विजयं भुवि लब्धवान् । ५ ।

धवलिते यशसा किल चाखिले
जगति राम नरेश महात्मन:
मृगयते बृषभं शशिशेखर:
गिरिसुता चकिता च पिनाकिनम् । ६ ।

दनुज वंश हुताशनमादरात्
सकल नीति विदं च विभीषणम्
स्व सविधे विनतं च चकार सः
रघुकुलाभिजनो रघुनन्दनः । ७ ।

निशिचराः सकलाश्च पतंगवत्
दशरथात्मज वक्ष हुताशने
विशिख हव्य विसर्ग समर्पिते
हुतवहेन समं च दिवंगताः । ८ ।

यमपुरं सहसा दश कन्धरे
प्रचलिते सहसा अखिल बन्धुभि
विजित राज्य मदात् तृणवत्तदा
सकल कामदुघं भरताग्रजः । ९ ।

प्रचुर दानवतः करुणानिधेः
रघुवरस्य यशो जगतीह वै
अमरता मगमच्च तथा यथा
स तु जनैर्भगवानिति मन्यते ।१०।

द्विगुणितं वसुवर्षमितं पुरा
स समयं ह्यतिवाह्य विदांवरः
स कुशलं गृहमेत्य च सीतया
सह चिरं जनतामनुरञ्जयत् ।११।

सहचरीं वनितां नमितामहो
सहजरागमतीमपि बोधयन्
प्रकृति रञ्जनमेव हि मानयन्
स सहसा किमु निर्जन मीयिवान् ।१२।

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
नाहन (हि०प्र०)

प्रेयसीं प्रति

● प्रेम लाल आचार्य

अयि मम प्रेयसि, प्रेयसि प्रेयसि,
अत्रायाहि त्वं कुत्र गन्तुमिच्छसि ।
पश्यचेत् त्वं मयि न स्निह्यसि,
त्वया साकं अहमप्यत्र प्राणान् मोक्ष्यामि
अयि मम...... ।१।

मानस मन्दिरे त्व हि मदीये,
वारं वारमायाति हे प्रिये !
जायते महती पीड़ा हृदये
किमहं करवाणि त्वं वद प्रिये ।
चेत: मम त्वदाकारो हरसि
त्वया साकं ..., ।२।

त्वयि महद्दीच्छा मां सन्ताप्यति
अहर्निशं प्रिये अशान्तिमाप्नोमि,
आगच्छ, आगच्छ, प्रिये, क्षणं विरम
प्रतीक्षायामेवऽभवत् अति चिरम्
इतोऽपिमुग्धे ! मयि कुप्यसि
त्वया सकं...... ।३।

स्मरामि कस्या मुखारविन्दम्

● प्रेम लाल आचार्य

प्रस्तिग्धन्मेचक केशजालं,
सिन्दूर बिन्दु संयुक्त भालं ।
लाक्तक रसेन विजितप्रबालं
स्मराभि कस्या: मुखारविन्दम् ।१।

रम्यं पक्वनारंग वर्णम्,
शिरोरूहैराच्छादित कर्णम् ।
सस्मितं सदैवाधर पर्णम्,
स्मरामिकस्याः मुखारविन्दम् ।२।

रक्ताक्त ओष्ठौ सप्रवालयुक्तं,
शुभ्रदन्तावलि च बिभाति ।
कामशर-तिर्यक् भृकुटिजालं
स्मरामि कस्याः मुखारविन्दम् ।३।

कर्णयोर्भाति तव कर्णिकारम्
नासाग्र भागे वलयं धरित्रि ।
सर्वं खलु मे आनन्दकारम्
स्मरामिकस्याः मुखारविन्दम् ।४।

अद्वितीया लीला तवमावभङ्गिमा
पटावगूढेस्मित आननेन्दु ते ।
धन्य खलु ईदृशी रचनाकारम्
स्मरामि कस्याः मुखारविन्दम् ।५।

राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
नाहन, हिमाचल प्रदेश

जननी भगवति

● मनसा राम शर्मा 'अरुण'

मुख्यबन्ध: —

जयसि जय-जय जननि ! भगवति !!
जयसि मालाधारिणि !!

आवर्तक-बन्ध: —

कमल पदवीं त्यजतु मातः ।
त्वमसि जन-गण तारिणि ।।

अन्तरा बन्धा: —

(अ) वससि नयगिरौ व्यास-स्थाने
रक्ष जलधि-सुतारिणि ।।

(आ) रम्यकेशे ! रम्य नयने त्वमसि देशविहारिणि ।

(इ) उन्नय देशं भाव-विशेषं जगन्मञ्चसुचारिणि !।

राज्य शिक्षा संस्थान
सोलन, हिमाचल प्रदेश

देशदशा

● केशव राम शर्मा

समीक्ष्य देशदशां धीमतां मनो म्लानम्
सतां क्षतिः सततं यत्र दुष्कृतां मानम् ।

स्वमातृभूमिमहो वञ्चयन्ति ये लोकाः
प्रवर्धते खलु तेषां महायशोगानम् ।

अधार्मिकः कुटिलः कुत्सितः खलो यः स्यात्
विनिर्मिमित्सति लोकस्तमेव राजानम् ।

बिनिन्द्य निर्मलमध्यात्मतत्त्वभुन्मत्तः
पुरस्करोति समाजो हि भूतविज्ञानम् ।

पतङ्गवत् निपतन् तप्ततैलदीपेऽपि
करोति नैव विमुग्धो स्वदुर्दशाभानम् ।

क्षुधातुरः प्रतिवेशी शयीत कामं हा
करोति मुष्टिमितं नैव तत्कृते दानम् ।

समूलघातमहो हन्ति यो निजाधारम्,
धिगस्तु तं सुधिय मुर्धैव मन्वानम् ।

राजकीय महाविद्यालय
सोलन, हिमाचल प्रदेश

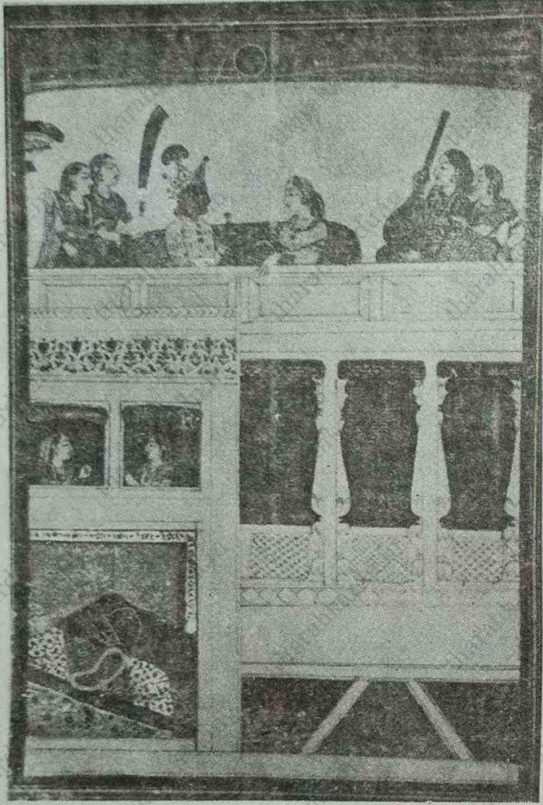

युगल छवि : चम्बा शैली निर्माणकाल लगभग 1860 ई० । चांदनी रात में राधा और कृष्ण चबूतरे में बैठकर संगीत का आनन्द लेते हुए ।

छाया : सुरेन्द्र मोहन सेठी

आलेख : र०ज०

सचिव हिमाचल कला संस्कृति और भाषा अकादमी क्लिफ़ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001 दूरभाष 2651 द्वारा प्रकाशित तथा न्यू प्रिन्टर्ज़-ग्रीन फील्ड कॉटेज, शिमला-171 001 दूरभाष 6660 द्वारा मुद्रित ।